ओ३म्

मेरी प्रथम दृष्टि में-

ऐतरेयब्राह्मणविज्ञान

लेखक

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

सम्पादकद्वय

प्रोफेसर वसन्तकुमार मदनसुरे
B.Tech. (विद्युत् अभि.) M.Tech. Ph.D

एवम्

डॉ. मोक्षराज आर्य
एम.ए. (वैदिक वाङ्मय), आचार्य (धर्मशास्त्र) Ph.D

प्रथम संस्करण
दो हजार प्रतियाँ

चैत्र शुक्ला,श्रीरामनवमी २०६९,
रविवार (01 अप्रैल 2012)

प्रकाशक

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास
(वैदिक एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान शोध संस्थान)
वेद विज्ञान मन्दिर, भागलभीम
भीनमाल, जिला-जालोर
(राजस्थान) पिन- ३४३०२९
दूरभाष- ०२९६९ २९२१०३, ०९८२९१४८४००, ०७७४२४१९९५६
Website : www.vaidicscience.com
E-mail : swamiagnivrat@gmail.com

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय

सम्मान्य प्रबुद्ध पाठकगण! आप सभी सम्भवतः पूज्य आचार्य अग्निव्रत जी नैष्ठिक के वेद विज्ञान अनुसंधान कार्य से परिचित हैं। अनेक वेदभक्त आर्य जनों, विद्वानों की प्रायः यह आशंका रही है कि पता नहीं आचार्य जी क्या शोध कर रहे हैं? क्या मिलेगा? अब तक क्या कुछ प्राप्त हुआ? कुछ भी परिणाम प्रकाशित क्यों नहीं कराया? क्या आचार्य जी कोई यन्त्र, विमान आदि बना रहे हैं? ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य को छोड़कर इसमें फंसना मूर्खता नहीं है? इससे क्या होगा, इसकी क्या आवश्यकता है? इस प्रकार के कई विचार, व्यंग, शंकायें हम यदा कदा सुनते रहे हैं। इस सन्दर्भ में हम अपने समस्त वेदभक्त विद्वद्बन्धुओं, दानदाताओं और वैज्ञानिकों को यह निवेदन करना चाहते हैं कि परमपिता परमात्मा की असीम कृपा एवं आप सबके सहयोग से आचार्य जी ने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रारम्भिक वैज्ञानिक भाष्य पूर्ण करके उपर्युक्त सभी आशंकाओं को दूर करने तथा भविष्य की महत्वपूर्ण योजना को आप सभी महानुभावों को विदित कराने हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण इस पुस्तक को महान् मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम जी के पावन जन्म दिवस पर पूर्ण किया है। इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ने से न केवल उपर्युक्त प्रश्नों का समुचित उत्तर मिल सकेगा अपितु इस बात का स्पष्टतः आभास सबको हो सकेगा कि **अब आचार्य जी का कार्य केवल उनके वेद को अपौरुषेय व सर्वज्ञानमय सिद्ध करने के संकल्प तक ही सीमित न रहकर समस्त वैदिक वाङ्मय को समझने की प्राचीन वैज्ञानिक आर्ष परम्परा के पुनरूद्धार का भी महान् हेतु बनेगा।** इस लघु परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ से न केवल वैदिक विद्वानों अपितु उच्च भौतिक वैज्ञानिक महानुभावों को भी एक नूतन आशा की ज्योति दिखायी देगी जिसके बारे में सम्पूर्ण रूप से अभी तक विचारा नहीं गया है।

मान्यवर! आचार्य जी ने वेद साधना के महान् यज्ञ में अपने जीवन की आहुति दे दी है तथा अहर्निश अपने को तपा रहे हैं। शक्ति से अधिक जो परिश्रम कर रहे हैं, उसे उनके निकटस्थ हम लोग ही जानते हैं। अब अपनी लक्ष्य सिद्धि तक वे न कुछ लिखना चाहते हैं और न कुछ व्याख्यानादि देना चाहते हैं। तब प्रत्येक वेदभक्त चाहे वे आर्य समाजी हों अथवा पौराणिक अथवा विशुद्ध विज्ञान के अध्येता हों, सबको उत्साह के साथ तन, मन व धन से विशेष सहयोग करना चाहिए। आर्यो! अब आपके केवल आपके स्वयं के आर्थिक सहयोग से ही बात नहीं बनेगी अपितु हर दानदाता को कार्यकर्ता की भाँति आगे आकर आचार्य जी को सर्वविध निश्चिन्त करने का महान् पुरुषार्थ करना होगा।

आशा है आप सभी हमारे अनुरोध को स्वीकार कर इस ज्ञान विज्ञान के महान् यज्ञ में अपनी–2 पवित्र आहुति देने हेतु उत्साह से आगे बढ़कर अपनी महान् वैदिक संस्कृति को विश्व में प्रतिष्ठित करने के साथ वर्तमान विज्ञान को शान्ति विधायक बनाने में हमारे साथ मिलकर चलेंगे।

इसी आशा के साथ

डॉ. पदमसिंह चौहान
न्यास मंत्री

सम्पादकीय

(अ)

ओ३म् सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमो अवति हन्त्यासत्।।
ऋग्वेद ७/१०४/१२, अथर्व. ८/४/१२

प्रमाणित तथ्य है कि कोई भी विद्या शाखा अकेली जीवित नहीं रह सकती बल्कि विभिन्न शाखायें एक साथ अस्तित्व में आती हैं। आधुनिक युग में भी गणित, भौतिकी, रसायन, जैविकी इत्यादि विज्ञान की विभिन्न शाखायें एक साथ विकसित होती गयीं। इसी के साथ इन पर आधारित अन्य बहुत से व्यवहारिक व तकनीकी पक्ष विकसित होते गये। इसके अतिरिक्त यह भी सिद्ध है कि एक ही विद्याशाखा के तकनीकी एवं व्यवहारिक के अतिरिक्त सैद्धान्तिक, प्रायोगिक व आनुसंधानिक पक्ष भी होते हैं। यदि इन सभी पक्षों में पूर्ण समन्वय न हो तो कालान्तर में वह विद्याशाखा लुप्त हो जाती है। हमारे देश में प्राचीन वैदिक काल में ये सभी विद्यायें अपने–2 पक्षों के साथ पूर्ण विकसित थीं। जिस समय संसार के अन्य देशों में विद्या–विज्ञान का विशेष स्थान न था, उस समय हमारे देश में ये चरम स्थान पर थीं। रामायण व महाभारत कालीन अस्त्र–शस्त्र, विमान विद्या, शिल्पविद्या, चिकित्सा विज्ञान अत्युच्च कोटि का था। कुरुक्षेत्र के हथियारों के अवशेष व रामसेतु पर विकिरणों का प्रभाव यह बतलाता है कि उस समय नाभिकीय ऊर्जा का भी उपयोग होता था। इसमें विशेषता यह भी थी कि वे अस्त्र नियंत्रित भी हो सकते थे, साथ ही उन्हें निष्क्रिय करने वाले अन्य अस्त्र भी विद्यमान थे, जो आज नहीं है। युद्ध में गम्भीर घायलों की त्वरित व पूर्ण चिकित्सा की व्यवस्था होती थी। देव, राक्षस, गन्धर्व, असुर आदि वर्गों की विमान विद्या अब की अपेक्षा भी विशिष्ट थी।

सत्यार्थ प्रकाश की अनुभूमिका में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती लिखते हैं, ''यह सिद्ध बात है कि पाँच सहस्र वर्षों के पूर्व वेद मत से भिन्न दूसरा कोई भी मत नहीं था।'' इसी वेद मत के कारण न केवल आर्यों का सृष्टि से लेकर महाभारत काल तक सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य था अपितु इसी वेद मत से प्रसूत उच्च कोटि का ज्ञान विज्ञान भी भूमण्डल में प्रसिद्ध था। महाभारत युद्ध के कारण न केवल आर्यों का राज्य नष्ट हुआ अपितु इनकी ज्ञान विज्ञान की परम्परा भी धीरे–2 दुर्बल होते–2 लुप्त सी हो गयी। वैदिक परम्परा के अनुसार प्राणियों के तीन प्रकार के शरीर (स्थूल, सूक्ष्म व कारण) तथा पाँच कोष (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय) होते हैं। मनुष्य के उत्तरोत्तर श्रेष्ठता व शुद्धता निर्माण हेतु इन सबको उन्नत करना अनिवार्य है, जिससे **भोग व मोक्ष दोनों की प्राप्ति सम्भव होती है। इस कार्य के लिए मनुष्य को सृष्टि एवं सृष्टि सृजेता ईश्वर दोनों के उपयोग की आवश्यकता होती है।** इनका यथायोग्य व्यवस्थित ज्ञान ही क्रमशः पदार्थ विज्ञान (Physical Science) एवं आध्यात्मिक विज्ञान (Spiritual Science) कहलाता है। इन दोनों के ही सम्मिलित सदुपयोग से ही मानव जीवन सार्थक व आनन्दमय होता है। प्राचीन वैदिक विज्ञान इन दोनों का ही सम्मिलित व सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वांगीण रूप है परन्तु आज उस वैदिक विज्ञान के सर्वांगीण अध्ययन की महती आवश्यकता है। वर्तमान युग में इसके लिए महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने एक मार्गदर्शक का काम किया है। हमें इस हेतु आधुनिक विज्ञान को भी गम्भीरता से समझना होगा। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने वेदों के पारमार्थिक एवं व्यवहारिक भाष्य किये परन्तु वे समयाभाव के कारण सांकेतिक भाष्य ही कर सके, जैसा कि आचार्य अग्निव्रत जी नैष्ठिक ने अपनी इस पुस्तक ''मेरी प्रथम दृष्टि में– ऐतरेयब्राह्मणविज्ञान'' में लिखा है। काश! महर्षि को पूर्ण आयु मिलता और वे विस्तृत भाष्य कर पाते, साथ ही ब्राह्मणग्रन्थ, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, दर्शन, उपनिषद्, निरुक्त आदि समस्त आर्ष साहित्य का भाष्य महर्षि कर जाते तो निश्चित ही भूखण्ड में भारत के वैदिक विज्ञान का सूर्य चमक रहा होता परन्तु दुर्भाग्यवश यह सब नहीं हो पाया। महर्षि के अनुयायी महर्षि की भावना को समझे बिना वेद का नाम लेने वाले रह गये। **महर्षि ने कहा था कि अपरा विद्या का ही उत्तम फल परा विद्या है।** वे अपने वेद भाष्य में जगह–2 पदार्थ विद्या, सृष्टि विद्या और शिल्प विद्या का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार के वैदिक अनुसंधान हेतु आर्य विद्वान् पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर, पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक, स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ, स्वामी ब्रह्ममुनि जी, पं. धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, आचार्य उदयवीर जी शास्त्री, स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती, डा. सत्यव्रत जी राजेश जैसे दिवंगत एवं डा. रामनाथ जी वेदालंकार, आचार्य डा. विशुद्धानन्द जी मिश्र इत्यादि वर्तमान विद्वान् आग्रह करते रहे हैं। इस युग के

विज्ञान के शीर्ष व्यक्ति सर अल्बर्ट आइंस्टाइन भी कहते हैं कि 'विज्ञान के बिना धर्म अंधा है और धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है।'

प्रख्यात आर्य विद्वान् स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ अपनी लघु पुस्तिका 'वेद परिचय' में वेद में विज्ञान समझने के लिए विज्ञान की शब्दावली, परिभाषायें आदि की जानकारी होना जरूरी समझते हैं। उदाहरण के रूप में आधुनिक रसायनशास्त्र की अंगेजी भाषा में लिखी किसी पुस्तक को एक अंगेजी भाषा का स्नातकोत्तर पढ़ तो सकेगा परन्तु समझ नहीं सकेगा। **इस प्रकार केवल व्याकरण वा साहित्य पढ़कर ही वेद के विज्ञान को नहीं समझा जा सकेगा। इसके लिए इसके साथ वैज्ञानिक प्रज्ञा एवं परिभाषाओं की भी महती आवश्यकता होगी।**

आज दुर्भाग्य यही है कि साहित्य क्षेत्र में पारंगत अथवा केवल व्याकरण के विद्वान् वेद, ब्राह्मणग्रन्थ एवं दर्शनों को समझने व समझाने का प्रयास करते हैं। वैज्ञानिक प्रज्ञावान् कोई दिखायी देता नहीं। अतः महर्षि का कथन 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' स्वप्न मात्र बनकर रह गया है।

सौभाग्य से आर्य जगत् में आचार्य श्री अग्निव्रत जी नैष्ठिक ने वेद, ब्राह्मणग्रन्थ व दर्शनों के वास्तविक उद्देश्य को महर्षि दयानन्द जी महाराज की मूल भावना के अनुसार समझने का प्रयास किया है व कर रहे हैं। आपने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रारम्भिक वैज्ञानिक भाष्य अभी–2 पूर्ण किया है। हम अभी तक सुनते आये हैं कि ब्राह्मणग्रन्थों में सृष्टि विज्ञान है परन्तु अभी तक इस विषय में किसी ने कुछ स्पष्ट किया हो, ऐसा जानकारी में नहीं आता। अब आचार्य जी का यह प्रारम्भिक भाष्य भी उपलब्ध सभी भाष्यों से विशिष्ट है। हाँ, इतना अवश्य है कि मैं विशुद्ध विज्ञान का व्यक्ति होने के कारण मेरी समझ में यह प्रारम्भिक भाष्य नहीं आता क्योंकि इसकी शब्दावली वैदिक ढंग की है, **पुनरपि ऐसा संकेत अवश्य मिलता है कि इसके अन्तिम भाष्य में वैदिक विज्ञान का चमत्कारी स्पष्ट विवेचन मिल सकेगा।** इस पुस्तक में आचार्य जी ने जो प्रश्न विशुद्ध विज्ञान के उठाये हैं और यह दावा किया है कि इनका उत्तर इस प्रारम्भिक व्याख्यान में भी उपलब्ध है परन्तु अभी उसे पूर्ण गोपनीय रखा है। केवल चार प्रश्नों के उत्तर नमूने के लिए सार्वजनिक भी कर दिये हैं। **इस पुस्तक में वे एक सौ प्रश्न साधारण स्तर के नहीं हैं बल्कि कई प्रश्न अत्यन्त गम्भीर हैं। जब इन गम्भीर प्रश्नों का उत्तर इस प्रारम्भिक भाष्य में ही विद्यमान हैं तब निश्चित है कि अन्तिम व्याख्यान में आधुनिक विज्ञान के लिए एक नया प्रकाश मिल सकेगा। उधर वैदिक विद्वानों के सम्मुख जो 43 बिन्दु दिये हैं, वे भी साधारण स्तर के नहीं हैं। उनमें से कई बिन्दुओं पर अभी तक विचारा भी नहीं गया है। उन बिन्दुओं का विवेचन अन्तिम भाष्य में होगा, जैसा कि आचार्य जी का दावा है, तो यह सम्पूर्ण वैदिक जगत् में एक क्रान्ति लायेगा और वह क्रान्ति महर्षि दयानन्द जी की भावना को ही साकार करेगी।** आचार्य जी के प्रश्नों एवं उनके कथनानुसार ऐतरेय ब्राह्मण केवल सृष्टि उत्पत्ति का ही विज्ञान नहीं बल्कि सृष्टि विज्ञान के विभिन्न पक्षों यथा– **सृष्टि उत्पत्ति, कण भौतिकी, परमाणु–नाभिकीय भौतिकी, प्लाज्मा भौतिकी, खगोल भौतिकी आदि का विवेचक ग्रन्थ है।** आचार्य जी ने इस लघु पुस्तिका में अपने कार्य का पूरा लेखा जोखा दिया है, जिसमें आगामी सम्भावित परिणाम, मार्ग की कठिनाइयाँ, वर्तमान स्थिति एवं विश्व में प्रचलित विभिन्न विद्याओं की विचारधाराओं का विशद विवेचन किया है। एक चर्चा के दौरान कि अपना वैदिक विज्ञान आधुनिक विज्ञान की शैली से किस प्रकार संगत होगा? आचार्य जी का कहना है– ''वैदिक विज्ञान को आधुनिक से संगत करने का अन्तिम भाष्य में पूर्ण प्रयास करूँगा पुनरपि पूर्ण संगति नहीं आये तब भी विशेष चिन्ता नहीं करनी है।'' वे एक उदाहरण द्वारा इस बात को स्पष्ट करते हैं–

'आज चिकित्सा क्षेत्र में ऐलोपैथी, आयुर्वेदिक, होम्योपैथी, यूनानी, प्राकृतिक व योग (व्यायाम, प्राणायाम) चिकित्सा आदि अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। सभी पद्धतियों की प्रक्रिया व सिद्धान्तों में भी भारी भेद है। ऐलोपैथी पद्धति कई रोगों का कारण जीवाणुओं को मानती है और इस पद्धति से वे चिकित्सा भी करते हैं तथा सफल भी होते हैं। सर्जरी तो इस समय इसी पद्धति की विश्व विख्यात है। तपेदिक (टी.बी.) की उत्तम चिकित्सा वर्तमान में केवल इसी पद्धति में उपलब्ध है। उधर आयुर्वेदिक पद्धति के सिद्धान्त से वात–पित्त–कफ की विषमता रोगों का कारण है। यह पद्धति इसी को लेकर जीर्ण व असाध्य माने जाने वाले रोगों की स्थायी चिकित्सा करने में सक्षम है। यदि ऐलोपैथी वाले चिकित्सक को कहा जाये कि 20 प्रकार के कफ रोग, 40 प्रकार के पित्त रोग तथा 80 प्रकार के वात रोग होते हैं तो वह चिकित्सक हँसेगा ही परन्तु आयुर्वेदज्ञ इन्हें इसी रूप में समझकर दूर करता ही है। उधर प्राकृतिक व यौगिक चिकित्सा केवल शरीर शोधन एवं व्यायाम, प्राणायाम से ही रोग निर्मूलन करने में सक्षम हैं। केवल शोधन से मलेरिया, टाइफाइड, डेंगू, चिकनगुनियां, दमा, मधुमेह, हृदयरोग, गठिया आदि रोग दूर हो सकते हैं, ऐसा कोई भी ऐलोपैथी वाला कभी स्वीकार नहीं कर सकता है परन्तु यह है, पूर्ण सत्य।' आचार्य जी का मानना है, **'परिणाम से ही पद्धति की प्रामाणिकता की परीक्षा होती है। यदि आधुनिक वैज्ञानिकों और आर्य भट्ट, भास्कराचार्य, वराहमिहिर आदि की गणनायें मेल खाती हैं, तब यदि उनकी पद्धतियाँ, परिभाषायें एवं शब्दावली भिन्न भले ही हो तो भी क्या समस्या है? हाँ, परिणाम अवश्य आना**

चाहिए, केवल विज्ञान–2 की रट लगाने अथवा अव्यवहारिक पद्धति को बतलाने से कुछ सिद्ध नहीं होगा।' आचार्य जी का यह मत मुझे उचित ही प्रतीत होता है। आशा है ऐतरेय के अन्तिम भाष्य से एक ऐसा वैदिक विज्ञान प्रकाशित होगा जो व्यवहारिक, प्रायोगिक एवं तकनीकी का उत्पादक होगा। हाँ, **इस भाष्य से मूलभूत विज्ञान का ही प्रकाशन होगा, तकनीक का आविष्कार उच्च स्तरीय तकनीकी विशेषज्ञ ही इसकी सहायता से कर सकेंगे, जैसा कि आचार्य जी ने इस पुस्तक में लिखा भी है। हाँ, यह कार्य अति कष्ट साध्य है। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती भी सत्यार्थ प्रकाश की अनुभूमिका में लिखते हैं कि विज्ञान गुप्त हुए का पुनर्मिलना सहज नहीं है। अतः किसी को भी इस कार्य में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।**

अन्त में पाठकों से निवेदन है कि इस पुस्तिका को ध्यानपूर्वक पढ़कर ही इस कार्य को विशिष्टता से जाना जा सकेगा। आशा है पाठक इसे पढ़कर, कार्य की महत्ता को समझकर आचार्य जी का सर्वविध सहयोग में तत्पर होंगे तथा दूसरों को भी इस हेतु प्रेरित करेंगे।

इसी आशा व विश्वास के साथ

प्रो. वसन्तकुमार मदनसुरे, अकोला (महा.)

(ब)

समस्त वैदिक वाङ्मय एवं साहित्य की अनुपलब्धता एक बड़ी समस्या है। मूल संहिता भाग सहित प्रमुखतया 13 शाखायें ही उपलब्ध हैं, शेष 1108 शाखायें अप्राप्त हैं। उपवेद, प्रतिशाख्य, याज्ञिकी व शिल्प सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ या तो लुप्त हो गये या जला वा चुरा लिये गये। ग्रन्थों का यथाक्रम अप्राप्त होना प्रथम समस्या है।

दूसरी समस्या है, प्राप्त ग्रन्थों में विद्वानों की गति की। आचार्य कैयट, कुमारिल भट्ट, भास्कर, वाचस्पति मिश्र, महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसी निष्ठा, समर्पण, योग्यता व परम्परा के लोप से परे तक देखने की दृष्टि का अभाव होना। अर्थ–काम में आसक्त लोगों को धर्म का ज्ञान नहीं होता अर्थात् तत्वों के सूक्ष्म स्वरूप व ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता। अधार्मिक विद्वानों का अन्तःकरण पवित्र न होने से उसमें ईश्वरीय दिव्य प्रेरणायें अवरूद्ध हो जाती हैं। एक सच्चा साधक आकाश में विद्यमान अक्षर व शब्दराशि को जानकर अनेक रहस्यों से पर्दा हटा देता है। वह आर्ष दृष्टि न प्राप्त होना दूसरी समस्या है अर्थात् उपलब्ध ग्रन्थों को ही समझ लें तो भी बहुत उपकार संसार का सम्भव है।

उक्त दोनों समस्याओं के विद्यमान होने पर भी यदि कहीं कोई वैदिक ग्रन्थ समझने–समझाने की आशा व्यक्त करता हो तो क्यों न आर्य जाति में उल्लास होगा? आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक वर्षों से सनातन वैदिक धर्म को अपनी स्तरीय सेवायें प्रदान कर रहे हैं। उन्होंने सृष्टि के मूल कारणों को खोजते हुए सूक्ष्मतम तत्वों के स्वरूप को प्रकट करने का यत्न किया है। वैदिकों एवं भौतिक विज्ञानियों को आचार्य जी ने अनेक प्रश्न व समाधान प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः यह उनका अद्वितीय पुरुषार्थ है, जो व्यापक आकार ले रहा है।

इतिहास से ज्ञात होता है कि एक–2 तत्व या सूत्र की खोज से संसार भर के वैज्ञानिक विश्वस्तरीय ख्याति तथा आशातीत दानवैभव प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु आचार्य अग्निव्रत बिना किसी लौकिक स्वार्थ के निरन्तर जनहितार्थ एक नहीं सैकड़ों तत्व व सूत्रों का उद्घाटन करने में समर्थ दिखायी दे रहे हैं। इनके इस कार्य का आकलन भविष्य करेगा।

''मेरी प्रथम दृष्टि में– ऐतरेयब्राह्मणविज्ञान'' पुस्तक को पढ़कर आप यह अनुमान कर सकेंगे कि जो प्रश्न वैदिकों एवं भौतिक विज्ञानियों के समक्ष आचार्य जी ने उठाये हैं, वे कितने गम्भीर व महत्वपूर्ण हैं। जिन विषयों की ओर भौतिक विज्ञानी अभी सोच भी नहीं पाये हैं, उस ओर भी उन्होंने संकेत किया है। जिन्हें वैज्ञानिक अधूरा जानते हैं उसे पूर्णता की ओर अग्रेषित करने का विश्वास प्रकट किया है। इसी प्रकार वैज्ञानिक जिन विषयों को साधिकार जानते हैं उनमें ऐसा परिष्कार व भाव उत्पन्न किया है, जिससे वे समस्त प्राणियों के प्रति हितकारी सिद्ध हों।

इस पुस्तक में साधारण विषयों के ही संकेत हैं, गूढ़तम सिद्ध विषयों को प्रकट करने का समय अभी नहीं आया है। जब ऐतरेय ब्राह्मण का अन्तिम वैज्ञानिक भाष्य हो जायेगा तब सारा विद्वत्समुदाय आश्चर्यचकित होगा। गूढ़ विषयों पर अनुसंधान की प्रक्रिया में उनका ईश्वरभक्त होना विशेष सहायक रहा है। कुछ प्रकरण तो ऐसे उपस्थित हुए जिसे

समझने में उन्हें एकाधिक सप्ताह भी बीत गये तथा अनेक स्थल क्रमशः सहज ही सुलझते गये। इस प्रक्रिया में उनका कोई पूर्वाग्रही पक्ष नहीं रहा, जिससे तालमेल बिठाने में उन्हें उलझन हुई हो बल्कि ब्राह्मण ग्रन्थ की मौलिकता प्रकट करने का ही आग्रह रहा। प्रकरण का स्पष्ट होना उनके हृदय में किसी महोत्सव से कम नहीं होता था।

उनकी विद्या साधना से यह भी उजागर हुआ है कि ऋषिगण अपनी विधा को किस प्रकार परम गोपनीय ढंग से सुरक्षित रखते थे? ऊपरी स्तर पर जो साधारण वाक्य प्रतीत होते थे, उनमें कितने रहस्य सिद्धान्त छिपे हैं? इसका अनुमान अब हम सभी कर सकेंगे। ब्राह्मणों के शब्दार्थ समझने से ज्यादा दुरूह है उसके पीछे छुपे विज्ञान को जानना।

ऐतरेय ब्राह्मण में नरबलि के तुल्य प्रतीत होने वाले प्रकरण कितने रहस्यमयी व उपकारी हो सकते हैं तथा उन रहस्यों के न जानने से कितने पाप होते रहे हैं? यह सब मूल की भूल से उपस्थित आर्यों को दुःखी करने वाले स्थल अब उनकी भावना व वेद की दृष्टि के अनुरूप खुल गये हैं, इससे हमें अपनी सांस्कृति विरासत के प्रति गर्व का अनुभव होगा।

ऐतरेय ब्राह्मण के इस अनन्तिम भाष्य को पढ़कर यह तथ्य भी उजागर हो सकेगा कि जो थोड़े–बहुत वेद–शास्त्र उपलब्ध हैं, उनसे भी भरपूर लाभ प्राप्त किया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि इस कार्य से ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रति संस्कृतज्ञों की अरुचि समाप्त होगी।

ग्रन्थों से प्रक्षिप्त अंश निकालने की आवश्यकता व होड़ पर पुनः विचार करना होगा। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐसा करने पर विशेष गौर करना होगा। कहीं ऐसा न हो कि जिन शास्त्रीय स्थलों को प्रक्षिप्त कहते हैं, वे नासमझी के कारण निकाल दिये जायें। यदि ऐसा पाप हुआ तो प्रकरण का क्रम विच्छेद होने से उपयोगी रहस्य हमेशा के लिए निरर्थक हो जायेगा, ऋषियों का उद्देश्य प्रभावित हो जायेगा। .... किं ऋचा करिष्यति। ऐसे प्रक्षिप्त धारणा वाले विद्वानों की ऋचा क्या करेगी?

वेदोक्त सप्त मर्यादाओं के साक्षात्रूप, नरपुङ्गव, भगवान् श्रीराम के जन्मोत्सव दिवस पर इस पुस्तक का प्रणयन न्यास के लिए गौरवपूर्ण व बधाइयों का हेतु है।

आर्यशिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने ऋषि–मुनियों की रसायन, आयुध, यन्त्र, शोध प्रभृति प्रयोगशालाओं की रक्षा की। उक्त आदर्श को ध्यान में रखते हुए ऋषियों के तप से संगृहीत सृष्टि विद्या को प्रकट करने का आचार्य श्री का प्रयत्न स्तुत्य है।

इस पुस्तक से अनेक सामयिक प्रतिक्रियायें शम होंगी।

विनीत

डॉ. मोक्षराज, अजमेर

ओ३म्

प्रारम्भिक निवेदन

मेरे आदरणीय पाठकगण! वर्षों से आप सब महानुभाव मेरे कार्य के विषय में सुनते, जानते रहे हैं। चाहे वह निन्दा के रूप में अथवा प्रशंसा के रूप में। हमारे न्यास से जो भी साहित्य अब तक प्रकाशित हुआ है, उसमें से सर्वप्रथम प्रकाशित पुस्तक 'सृष्टि का मूल उपादान कारण' विशुद्ध विज्ञान पर लिखी पुस्तक थी, जिसका अंग्रेजी अनुवाद "Basic Material Cause of the Creation" भी प्रकाशित हुआ। उसके बाद पिछले वर्ष प्रकाशित पुस्तकें 'बोलो! किधर जाओगे?' एवं 'सत्यार्थप्रकाश – उभरते प्रश्न, गर्जते उत्तर' पुस्तकें सिद्धान्त समीक्षा से सम्बन्धित थीं। इसके अतिरिक्त लगभग सभी पुस्तकें 'मांसाहार – धर्म, अर्थ और विज्ञान के आलोक में' के अतिरिक्त अपने वेद विज्ञान अनुसंधान कार्य को प्रचारित करने के लिए हमारे पास कोई प्रचारक उपलब्ध नहीं है, इसलिए विज्ञापक साहित्य भी लिखना मेरे लिए अनिवार्य हो गया था। फिर भी वह साहित्य मात्र एक विज्ञापन नहीं है अपितु वेद विज्ञान अनुसंधान की महत्ता और प्रक्रिया को बतलाने का महत्वपूर्ण साधन भी है। अब जब मेरे ऐतरेय ब्राह्मण का रफ व्याख्यान पूर्ण हो चुका है और **अनेक महानुभाव उतावलेपन से मेरे कार्य का परिणाम शीघ्र आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं तथा मुझसे बार–2 पूछ रहे हैं कि कितना काम हुआ और कितना शेष है? लगभग 8 वर्षों से अनेक दानदाता व सहयोगी कार्यकर्ता यह सब जानने की इच्छा करें, तो उन्हें इसका पूर्ण अधिकार है।** उन्हें नहीं पता कि मैं किस कठिन प्रक्रिया से गुजरता हुआ एकाकी अपने कार्य में लगा हुआ हूँ। मेरी कठिनाइयां निम्न लिखित हैं–

1. मैं वैदिक साहित्य के पठन–पाठन की वर्तमान में प्रचलित सभी परम्पराओं से असन्तुष्ट ही हूँ। मेरी दृष्टि में कोई भी परम्परा वैदिक आर्ष परम्परा को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती प्रतीत नहीं होती। लगभग सभी पौराणिक परम्पराएं अपने अध्येताओं को कर्मकाण्डोपजीवी मात्र बनाने वाली हैं। इधर आर्य समाज का विद्वत्समाज भी महर्षि देव दयानन्द जी महाराज की प्रतिभा को पहिचानने में असमर्थ सा प्रतीत हो रहा है और वह केवल पुरोहित, उपदेशक तैयार करने तक ही सीमित हो गया है। तो कहीं–2 सरकारी परीक्षाएं दिलाकर सरकारी कर्मचारी बनाने के साधन हो रहे हैं परन्तु वेद की महती वैज्ञानिकता को समझने–समझाने की न तो इच्छा दिखायी दे रही है और न प्रतिभा। उधर महर्षि को अपना कार्य अधूरा छोड़कर जाना पड़ा, तब उस अधूरे कार्य को उन्हीं की भावना के आलोक में समझना एक बड़ी चुनौती है। मेरा इस कार्य में कोई मार्गदर्शी अथवा साथी नहीं है। **आज जिस प्रकार का साहित्य सृजन आर्य समाज में हो रहा है, वैसा यदि चाहता तो अब तक बहुत कुछ लिख चुका होता परन्तु मेरा ऐसा प्रयोजन कभी नहीं रहा। मैं सब कुछ स्पष्ट, प्राचीन ऋषियों का ही नहीं अपितु सृष्टि–सृजेता परमात्मा के वैदिक विज्ञान को समझने पुनः सबको समझाने की भावना रखता हूँ।** हाँ, मैं अपने पौराणिक भाइयों जो स्वयं को सनातनी कहते हैं को यह अवश्य सूचित करना चाहूँगा कि भले ही आज का अभागा आर्य समाज अपने आदर्श भगवत्पाद महर्षि दयानन्द जी एवं वेद को भूलता जा रहा है आर्य समाज का हर प्रकार से पतन शोचनीय अवस्था तक हो चुका है, जिसकी मैंने इस पुस्तक में यत्र–तत्र चर्चा की है, पुनरपि मेरे इस वेद कार्य के लिए आर्थिक व मानसिक सहयोग करने वाले विशुद्ध आर्य समाजी ही हैं। कुछ पौराणिक विचारधारा वाले महानुभाव जिन्हें पूर्ण पौराणिक भी नहीं कहा जा सकता, मेरे व्यक्तिगत सहयोगी वह भी नगण्य संख्या में स्थानीय स्तर पर कोई–2 अवश्य हैं। मैंने अपना साहित्य पौराणिक जगत् के लगभग सभी शंकराचार्यों, कई ख्यातिलब्ध महामण्डलेश्वरों को भेजा था परन्तु वे तो श्रीमन्त बने अपने ही मद एवं गहरी मोहनिद्रा में मग्न प्रतीत होते हैं। जब मैंने अपने पाली–मारवाड़, कार्यालय से प्रथम विज्ञप्ति श्रीमान् अशोक जी सिंघल तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रिय अध्यक्ष, विश्व हिन्दू परिषद् को भेजी थी, तो उन्होंने बहुत प्रशंसा भरा पत्र लिखा था और ऐसा करते हुए भी आर्थिक सहयोग में असमर्थता दर्शा दी। वे ईंट पत्थरों के भवनों वा मेलों पर करोड़ों रुपये खर्च कर सकते हैं परन्तु वेद के इस महान् कार्य के लिए विश्व हिन्दू परिषद् के पास इतनी निर्धनता है। विश्व हिन्दू परिषद् के ही एक अन्य प्रसिद्ध धर्माचार्य श्रीमद् आचार्य श्री धर्मेन्द्र जी महाराज मेरा साहित्य प्राप्त होते ही धन्यवाद व आभार व्यक्त करते हैं। लगभग एक–डेढ़ वर्ष पूर्व उन्होंने दूरभाष पर कहा था– "आचार्य जी! भगवान् दयानन्द जी महाराज के उत्तराधिकारी आर्य समाज ने जितने बलिदान किये हैं, उतने भारत की अन्य किसी हिन्दू संस्था ने नहीं किये। कई तो ऐसे बलिदानी आर्य पुरुष होंगे, जिनको कोई जानता भी नहीं होगा। आपका कार्य बहुत महान् है पुनरपि मेरा निवेदन है कि आप आर्य समाज के गुमनाम बलिदानी वीरों का

इतिहास भी लिखने का कष्ट करें। यह बहुत बड़ा आवश्यक व महत्वपूर्ण कार्य है। मैंने प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु जी से भी यही आग्रह किया है।'' पिछले वर्ष मैंने उन्हें **'बोलो! किधर जाओगे?'** नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भेजी। उन्होंने प्राप्त करते ही मुझे फोन करके धन्यवाद दिया परन्तु अभी तक मेरे साहित्य पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दर्शायी और न इस वेद साधना के महान् यज्ञ में किसी पौराणिक धर्माचार्य, नेता वा पूंजीपति ने अपनी किसी प्रकार की आहुति का प्रस्ताव रखा। मुझे आश्चर्य है कि जो पौराणिक जगत् वेद, ऋषि, मुनि, देवी, देवता, यज्ञ, भारतीय संस्कृति–सभ्यता की बात करता है, जिसके पास लाखों साधुओं की भीड़ है, जिसके मन्दिरों में अपार सम्पदा का भण्डार है, वह पौराणिक जगत् क्यों नहीं अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग वेद विद्या के लिए करने के बारे में विचार भी करता? हाँ, जैसलमेर के स्व. श्रीमान् संत हरवंशसिंह जी निर्मल (श्री भादरिया जी महाराज) ने अवश्य लाखों की सम्पत्ति का प्रस्ताव भेजा था परन्तु उन्होंने मुझे वहां उन्हीं के मन्दिर में रहने का आग्रह किया था। वैसे स्वतंत्र रूप से वही राष्ट्रिय राजमार्ग 15 पर एक सौ बीघे भूमि, भवन आदि का भी प्रस्ताव भेजा था परन्तु मैंने इस आशंका से उसे स्वीकार नहीं किया कि कहीं उनके ट्रस्टी लोग महाराज जी के दिवंगत होने के पश्चात् हस्तक्षेप न करें। मैं उस महात्मा को अवश्य महान् उदार एवं विद्याप्रेमी मानता हूँ। सचमुच ऐसा प्रस्ताव तो किसी आर्य संस्था ने भी नहीं भेजा परन्तु अब समस्त पौराणिक जगत् में कोई ऐसा महात्मा प्रतीत नहीं होता। मैं समस्त पौराणिक बन्धुओं से निवेदन करूँगा कि मेरे भाई! इस पुस्तक में यद्यपि मैंने आर्य समाजी व पौराणिक दोनों ही के प्रति अपनी वेदना भी कहीं–2 दर्शायी है परन्तु क्या आप नहीं सोचते कि पौराणिक भाइयों ने देवता स्वरूप भगवान् दयानन्द जी को बार–2 विष दिया और अन्त में मार ही डाला परन्तु क्या कहीं किसी आर्य समाजी भले ही सच्चे आर्य समाजी नहीं हों, तो भी उन्होंने क्या किसी पौराणिक धर्माचार्य की हत्या की? उन्होंने मूर्तिपूजा का खण्डन अवश्य किया, वह भी इस कारण क्योंकि मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है और भारत के पतन का एक बहुत बड़ा कारण है परन्तु फिर भी **क्या किसी आर्य समाजी ने कभी कोई मन्दिर तोड़ा? हाँ, हैदराबाद में मन्दिरों को बचाने में आर्य समाजी ही अग्रणी रहे, बलिदान हुए, जेलों में यातनाएं सहीं। सब किसके लिए सहा? बोलो! मेरे भाई! आर्य समाजी इतने बुरे नहीं है, जितनी आप गाली देते हैं।** मेरे जैसे उदार आर्य समाजी को भी विशुद्ध वैदिक कार्य के लिए आप कभी कोई सहयोग नहीं कर पाये। कोई रुचि तक नहीं ले पाये। मैं तो फिर भी न केवल आप और आर्य समाज अपितु समस्त मानव जाति जो आज खण्ड–2 हो रही है, को एकता के सूत्र में बांधने हेतु एक सेतु बनाना चाहता हूँ और वह सेतु होगा– महर्षि दयानन्द जी महाराज से पूर्व जाते–2 आद्य महर्षि ब्रह्मा जी महाराज के द्वारा प्रस्तुत वेद विज्ञान का, जो मूलतः स्वयं परमपिता परमात्मा की देन है।

2. मेरे मित्र वैज्ञानिक महानुभाव जिस प्रकार से मुझसे शीघ्रता की आशा करते हैं, उनसे मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि आपकी पद्धति से हमारी यह पद्धति बहुत भिन्न है। आपके यहां जो भी वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध है, वह स्पष्ट भाषा में है। वहां electron का अर्थ electron नामक कण विशेष ही है, अन्य कुछ भी नहीं। water का अर्थ जल ही है, अन्य कुछ भी नहीं। Physicist का अर्थ भौतिकशास्त्री ही है, अन्य कुछ भी नहीं। energy का अर्थ ऊर्जा ही है, अन्य कुछ भी नहीं। मेरे मान्य वैज्ञानिक महानुभाव! जरा, आप इस बात पर विचार करने का कष्ट करें कि मान लें यदि electron शब्द का अर्थ cow, horse, fire, earth, sound आदि, water शब्द का अर्थ God, elephant, wave आदि, Physicist का अर्थ energy, electricity, mind आदि एवं energy शब्द का अर्थ rider, wind, donkey आदि सैकड़ों अर्थ होते। आपको कोई यह भी बताने वाला भी नहीं होता कि कौन सा अर्थ कहाँ ग्रहण करना है? कोई आपका साथी, सहयोगी भी न होता तब आपको फिजिक्स पढ़ने में कितनी कठिनाई होती? इस पर आप यह कह सकते हैं कि फिर वैदिक भाषा ऐसी क्यों है, जिसमें एक पद के अनेक बेमेल अर्थ भी निकल सकते हैं? आपका यह प्रश्न सर्वथा उचित है, जिसका उत्तर भी मैं अपने अन्तिम व्याख्यान की भूमिका में दूँगा।

मेरे पास उपलब्ध कोश में अग्नि पद के केवल ब्राह्मण ग्रन्थों से ही ७७१ सन्दर्भ दिये हैं। उन सन्दर्भों में क्या–2 अर्थ निकलता है, यह भी विचारना। इन सन्दर्भों के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द जी महाराज द्वारा वेद भाष्य के 'अग्नि' शब्द के अनेक अर्थ यथा– राजा, सेनापति, आचार्य, परमात्मा, जीवात्मा, विद्वान्, आग, विद्युत् आदि दिये हैं। इन सबमें से केवल एक को छांटकर प्रयोग करना। कोई मार्गदर्शक नहीं, कोई साथी सहयोगी नहीं। सर्वथा एकाकी परमात्मा के विश्वास पर अर्थ का चयन करना। इनमें से भी कोई अर्थ अनुकूल प्रतीत न हो तो अपने आप अर्थ की ऊहा करनी। इसी प्रकार अन्य शब्दों के भी अनेकों अर्थों में से इसी प्रकार एक अर्थ का चयन करके सभी शब्दों के चयनित अर्थों में परस्पर संगति लगानी, फिर उस समन्वय के बाद उनकी

वैज्ञानिकता सिद्ध करनी। कहीं गणित का आश्रय नहीं, प्रयोग–प्रेक्षण की कोई सुविधा नहीं। इसके बावजूद भी ऐसा विज्ञान निकालना जिस पर आप वैज्ञानिक महानुभाव अपना गणित, प्रयोगादि प्रक्रियाएं भी लागू कर सकें। आप ही विचारें कि मेरा कार्य आपके कार्य की अपेक्षा कितना कठिन है?

3. इसके अतिरिक्त यदि किसी शोधकर्ता को संस्था भी चलानी पड़े, वित्तीय प्रबन्धन भी करना पड़े, पूर्ण निश्चित आयस्रोत न हो, तब यह कार्य कितना कठिन होगा। शरीर भी बलवान् व पूर्ण स्वस्थ न हो। हाँ, शरीर से काम चलाने के लिए उस पर भी बहुत समय व्यायाम, प्राणायाम एवं सावधानी पूर्ण नियत दिनचर्या आदि के साथ–2 उचित खानपानादि का भी बहुत ध्यान रखना पड़ता है। आज के बेईमान व भ्रष्ट युग में यह भी चिन्तन रहे कि कहीं पाप से अर्जित धन न आ जाये अन्यथा मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो सकती है। सोचें! तब मेरी कैसी कठिनाई है?

इन तीन बाधाओं को अब तक तो ईश्वर की कृपा से पार पाता आ रहा हूँ। वित्त व्यवस्था मेरे सहयोगी महानुभाव कर रहे हैं और उन्हें ही करते रहना होगा। वर्तमान वैज्ञानिक क्षेत्र में मेरे प्रोत्साहक व मार्गदर्शक हैं **विश्व प्रसिद्ध थ्योरिटीकल एस्ट्रो फिजिसिस्ट प्रो. ए.के. मित्रा साहब, जो भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (BARC), मुम्बई में थ्योरिटीकल एस्ट्रोफिजिक्स में सेक्शन हैड हैं।** भारत में थ्योरिटीकल एस्ट्रोफिजिक्स क्षेत्र में कार्य करने वाले सर्वप्रथम वैज्ञानिक तथा कॉस्मिक स्रोतों में अल्ट्रा हाई इनर्जी गामा किरणों के उत्पादन में फोटो मैसोन की भूमिका को दर्शाने वाले विश्व के प्रथम खगोल विज्ञानी हैं। ब्लैक होल थ्यौरी की विश्व प्रचलित अवधारणा के स्थान पर ECO (Eeternally Collapsing Objects) की नयी अवधारणा प्रस्तुत करने वाले विश्व के प्रथम भौतिक वैज्ञानिक साथ ही बिग बैंग मॉडल को चुनौती देने वाले विश्व प्रसिद्ध भौतिक वैज्ञानिक हैं। आप 25 अगस्त 2004 को प्रथम परिचय से ही मेरे अति निकट मित्रवत् बन गये हैं। दो अन्य अन्तर्राष्ट्रिय वैज्ञानिक जिनमें एक हैं **प्रो. ए.आर. राव साहब, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेन्टल रिसर्च (TIFR) कोलाबा, मुम्बई में एस्ट्रोनॉमी एण्ड एस्ट्रो फिजिक्स विभाग के हैड हैं।** आप डेनिस स्पेश रिसर्च इंस्टीट्यूट, डेनमार्क में एक वर्ष 1987–88 में विजिटिंग प्रोफेसर भी रहे हैं तथा विभिन्न उपग्रहों यथा– PSLV-D3, GSLV-D2, Coronods-poton (Russion) के महत्वपूर्ण भागों में मुख्य अन्वेषणकर्ता तथा इस वर्ष छोड़े जाने की सम्भावना वाले उपग्रह PSLV-C22 के भी मुख्य अन्वेषणकर्ता हैं। दूसरे हैं **भारत के प्रख्यात पार्टिकल फिजिसिस्ट प्रो. ए.के. मण्डल साहब, ये भी टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेन्टल रिसर्च (TIFR) कोलाबा, मुम्बई में प्रोफेसर तथा न्यूट्रिनो आब्जर्वेट्री के सम्पूर्ण भारत के हैड हैं।** इसके साथ ही विश्व की सबसे बड़ी भौतिकी प्रयोगशाला CERN (जिनेवा, स्विटजरलैण्ड) में इस समय चल रहे महाप्रयोग में भारत की ओर से 70 वैज्ञानिक व इंजीनियरों के दल के भी आप ही मुखिया हैं। मैं वैदिक विद्वानों को बड़ी विनम्रता से अवगत कराना चाहता हूँ कि इन तीनों महान् वैज्ञानिकों में अतीव विनम्रता, सरलता, आत्मीयता, अतिथि सत्कार तथा सहयोग का भाव देखा है, जो दुर्दैव से संस्कृतज्ञ वा वेदज्ञ कहाने वालों में दुर्लभ हो गया है। वस्तुतः मुझे इस क्षेत्र में कार्य करने के मुख्य प्रेरक मान्यवर प्रो. मित्रा साहब ही हैं और उनसे मिलाने का एकमात्र श्रेय है– N.P.C.I.L. मुम्बई से सेवानिवृत्त एडीशनल चीफ इंजीनियर श्री विजयकुमार जी भल्ला को। इनके अतिरिक्त मैं मुम्बई, सूरत विश्वविद्यालय आदि के जिन भी भौतिकविदों से मिलता हूँ, सबमें मैंने मेरे प्रति अपार मैत्रीभाव देखा है। मैं वर्तमान विज्ञान के सिद्धान्तों से पूर्णतः सहमत नहीं हूँ परन्तु इनकी भावना से अभिभूत हूँ। काश! ऐसी भावना सभी वैदिक विद्वान् कहाने वालों में आ जाये, तो मेरा काम कितना सरल हो जाता परन्तु जैसा भी वातावरण हो, मुझे अनवरत अपने पथ पर बढ़ना ही है। मान्यवर मित्रा साहब एवं मान्यवर राव साहब तो मेरे इस वेद विज्ञान मन्दिर में 9 अक्टूबर 2011 को पधारे भी। ये वैज्ञानिक जिनकी आयु क्रमशः 55 व 57 वर्ष की है, अपने जीवन में प्रथम बार (आचार्य धर्मबन्धु जी के शिविरों को छोड़) जन सामान्य को सम्बोधित करने आये वह भी हमारे भागलभीम जैसे पिछड़े गांव में बने इस छोटे से संस्थान में, यह हमारे लिए ही नहीं अपितु समस्त आर्य जगत् के लिए गौरव की बात है।

अस्तु, मैं अपने निष्काम न्यासी महानुभावों एवं न्यास से जुड़े सभी सहयोगी जनों व दानदाताओं के श्रद्धा भरे पवित्र धन के दान से आगे बढ़ रहा हूँ। वस्तुतः ये मेरे सभी सहयोगी ही मेरे कार्य के आधार हैं। परमपिता परमात्मा सर्वाधार है, ही। मैं अब तक के अपने कार्य में सच्चिदानन्द परमात्मा की अनुपम कृपा को साक्षात् अनुभव किया है। उसी प्रभु की कृपा से मेरा अपने लक्ष्य का प्रथम चरण पूर्ण हो गया है। अब अपने अन्तिम व्याख्यान (भाष्य) की भूमिका जिसमें वैदिक पदों के स्वरूप के वैज्ञानिक स्वरूप को यथा सम्भव स्पष्टरूपेण परिभाषित करने के लिए दर्शन, निरुक्त, उपनिषद्, छन्दशास्त्र, महाभारत के कुछ प्रसंग, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर, पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक के ग्रन्थ आदि का स्वयं पुनः अध्ययन करना होगा। इन ग्रन्थों में मैंने जो पूर्व में रेखांकन किए हैं, उन पर पुनः गम्भीर चिन्तन अपनी उसी शैली से करना होगा, जो मैंने ऐतरेय ब्राह्मण के इस प्रारम्भिक व्याख्यान में अपनायी है।

मैं वर्तमान विद्वानों की चिन्तन शैली से अपना कोई सहयोग नहीं देख पा रहा हूँ। इस समय मेरे पास तीन शोध सहायक (वैतनिक) कार्यरत हैं। उनसे केवल महर्षि दयानन्द जी के वेद भाष्य में से कुछ संकलन करवा रहा हूँ। उस संकलित भाग को मुझे अपनी इसी दृष्टि से विचारना होगा। आधुनिक भौतिक विज्ञान की गम्भीर समस्याओं को समझने में उच्च स्तरीय वैज्ञानिकों से सम्पर्क यथावत् बनाये रखना व बढ़ाना होगा तथा अपने रफ व्याख्यान को पुनः गम्भीरता से पढ़ना होगा। मैं इस सब कार्य के लिए समय कम से कम तीन वर्ष तो मानकर चल रहा हूँ। जिसमें ग्रन्थ की भूमिका पूर्ण हो जायेगी। इसके पश्चात् मैं अपने भाष्य को अन्तिम रूप देने में लगूँगा। जिस भाष्य के रफ रूप को तैयार करने में लगभग 4 वर्ष लगे उसे अन्तिम व विस्तृत रूप देने में भी 4 वर्ष तो लगेंगे ही, ऐसा मेरा अनुमान है। फिर उसे प्रिण्ट कराने आदि में समय लगेगा। फिर उसे पूर्ण सुरक्षित करने के पश्चात् ही प्रकाश में लाऊँगा और मेरे पास महाशिवरात्रि विक्रमी सं. २०७७ अर्थात् सन् 2021 तक ही समय है। पाठक! जरा विचारें कि अकेले व्यक्ति के लिए जबकि वेद ब्राह्मण विषय में उसका शंका समाधानकर्ता तो दूर रहा, संवादकर्ता भी कहीं दिखायी नहीं देता हो, इतना सब कार्य इतने समय में करना क्या अति दुष्कर नहीं है? फिर भी मुझसे बार–2 जल्दी–2 करने का आग्रह किया जाता है। अब तक किये कार्य को प्रकाशित करवाने की हठ की जाती है। मैं नहीं समझ पा रहा कि ऐसे सहयोगी जनों को मैं अपने कार्य की दुष्करता व गम्भीरता कैसे समझाऊं? जो कार्य आर्य समाज के 135 वर्ष के इतिहास में सब वैदिक अनुसंधानकर्ता एवं अनेक संसाधनों से सम्पन्न सभा–संस्था नहीं कर पाये, पौराणिक भाई तो जड़–पूजा एवं भागवत आदि कुग्रन्थों को ही महिमामण्डित करते रहे। वेदों का तो नाम भी लेना भूल गये। जो वेद की बात करते हैं, वे भी वेदपाठ तक ही सीमित हैं। उस कार्य को करने के लिए इतना उतावलापन मैं कैसे सहन कर पाऊँगा? **मुझे निश्चिन्तता चाहिए, सहयोग चाहिए (वह भी केवल पवित्र महानुभावों का), पूज्यजनों का आशीर्वाद चाहिए। मेरा पुनः स्पष्ट निवेदन है कि मेरे पास इस कार्य को करने का कोई संक्षिप्त मार्ग (शॉर्ट कट) नहीं है। यदि कोई विद्वान् इस कार्य का ऐसा मार्ग जानने का दावा करता है, तो मेरा निवेदन है कि इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ लें, तदुपरान्त कृपया मुझे भी वह जादू विद्या सिखाने की कृपा करें,** जिससे मैं तत्काल अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकूँ। इस विषय में '**जगत् एवं वेद दोनों को समझना सरल नहीं**' नामक अध्याय अवश्य पढ़ने का कष्ट करें।

प्रिय पाठक! अब तक तो मैं अपने कार्य की जानकारी देने के लिए कुछ पुस्तक–पुस्तिकाएं लिखता भी रहा परन्तु अब तो मैं कुछ भी लिखने की इच्छा नहीं रखता। मुझे बहुत अध्ययन एकाकी ही करना है। **लक्ष्य बहुत बड़ा है, समय बहुत कम है, मेरा सामर्थ्य भी अल्प है। मैं विचार कर रहा हूँ कि क्या मेरे अन्तिम भाष्य प्रकाशित होने तक अर्थात् लगभग 8 वर्ष तक मैं किसी सहयोगी को नवीन सामग्री कुछ न कुछ नहीं भेजूँ, तब भी क्या वे मेरे साथ इसी भावना से जुड़े रहने का धैर्य रख सकेंगे? कुछ और सहयोगी वैतनिक बढ़ाने पड़े तो क्या वित्तीय व्यवस्था बराबर बनी रहेगी?** यह सब विचार कर मैं चिन्ता में भी पड़ जाता हूँ। परन्तु विचार आता है कि जैसे मेरे अध्ययन चिन्तन में परमात्मा की कृपा रहती है तथा अब तक उसी दयालु की कृपा से सहयोगी जुड़ते आ रहे हैं, वैसे ही सब काम सदा उसी परमात्मा की कृपा व प्रेरणा से होते रहेंगे। ईश्वरीय कार्य ईश्वरीय कृपा से ही पूर्ण होगा। सबसे बड़ी बात है कि सब धैर्य कैसे रखें? उन्हें अनुसंधान कार्यों की गम्भीरता कैसे समझ आये? **एक–2 वैज्ञानिक का जीवन एक ही खोज में खप जाता है, जबकि उसके पास स्पष्ट भाषा में वैज्ञानिक साहित्य होता है। संसार में उसके पास अनेक संवाद करने वाले अन्य वैज्ञानिक होते हैं। उसे कोई वित्तीय चिन्ता वा चिन्तन नहीं करना पड़ता। इधर अपने ऐतरेय ब्राह्मण व्याख्यान के द्वारा मैं इस पुस्तक में संकेत किये जाने वाले अनेक रहस्यों का उद्घाटन करने की आशा करता हूँ, तब मेरे भाई! मुझसे शीघ्रता मत चाहो।** मैं सबसे पत्र तो क्या फोन से भी सतत सम्पर्क नहीं रख पाता, यह मेरी विवशता है। इसके साथ ही सभी सहयोगी जनों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि मेरा लक्ष्य पूर्ण होने से पूर्व मुझे किसी भी कार्यक्रम में आने का आग्रह न किया जाये। मेरे किसी प्रकार के सम्मान, अभिनन्दन आदि के आयोजन का विचार भी नहीं किया जाये। क्योंकि लक्ष्य सिद्ध होने से पूर्व मैं इस कार्य के लिए कोई सम्मान, पुरस्कार व अभिनन्दन न कराने का संकल्प ले चुका हूँ। मैं कभी स्वयं पढ़ते–2 थक जाऊँ तो भले ही अनुकूलता से कहीं भ्रमणार्थ चला जाऊं। हाँ, एक बात विनम्रता से निवेदित कर देना चाहता हूँ कि **कोई भी मेरे विरोधी वा सहयोगी भले ही वे कितने ही निकट हों, यदि मेरे रफ व्याख्यान को देखने वा उस पर चर्चा का आग्रह करें, तो मैं अभी ऐसा कदापि नहीं करूँगा। आशा है वे मेरी विवशता मानकर क्षमा करेंगे। जो भी व्याख्यान मैंने अपने साहित्य में उद्धृत कर दिया है, उसी से सन्तोष करें।** मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ। शक्ति से अधिक श्रम करना होता है। मैं अपने सभी मार्गदर्शक उपर्युक्त वैज्ञानिकों, सभी न्यासी व न्यास से जुड़े सहयोगी महानुभावों, दानदाताओं का हृदय से कृतज्ञ हूँ। मैं उनके विश्वास को प्राणपण से निभाने का पूर्ण पुरुषार्थ कर रहा हूँ। इस पुस्तक को लिखने में मेरे न्यासी तथा मित्र सरल हृदय प्रोफेसर वसन्तकुमार जी मदनसुरे M.Tech. Ph.D. ने कुछ उपयोगी सुझाव देकर पुस्तक को कुछ और स्पष्ट करने हेतु मुझसे आग्रह किया और

'सृष्टि एवं वेद दोनों को समझना सरल नहीं' अध्याय को उन्होंने ही जुड़वाया है, जिसे मैंने स्वीकारा भी है। एतदर्थ मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। **यदि परमपिता परमात्मा की महती कृपा एवं मेरे प्रारब्धवश मेरा शरीर सुरक्षित व कार्य करने योग्य स्वस्थ रहा और आप सबका पवित्र निष्काम सहयोग व पूर्ण धैर्य बना रहा, तो लक्ष्य अवश्य पूर्ण होगा ऐसी मेरी आशा है अन्यथा मेरा संकल्प अटल रहेगा। कुछ महानुभाव शंका करते हैं कि मैंने वेद की अपौरूषेयता व वैज्ञानिकता को सिद्ध करने का संकल्प लिया था परन्तु वेद अथवा सृष्टि–उत्पत्ति को छोड़कर ऐतरेय ब्राह्मण का भाष्य करने लग गया। ऐसे मेरे बन्धु जब इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ेंगे तो उन्हें विदित हो जायेगा कि मेरा वर्तमान कार्य लक्ष्य से भी बहुत आगे की यात्रा तय करेगा। मैं केवल कर्म करने में स्वतंत्र हूँ। फल प्रभु ही देंगे।** मैं पूर्णरूपेण अपने महान् आदर्श पुरुष परमयोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज के कथन को आधार बनाकर आप सबसे निवेदन करूँगा– ''कर्मण्येवाधिकारो मे मा फलेषु कदाचन'' अर्थात् मैंने तो स्वयं पूर्णरूपेण प्रभु को सौंप दिया है।

अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे हाथों में
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में।।

यह मेरी अटल मानसिकता बन गयी है। इसी भावनावश प्रातः जागरण के मंत्रों के पश्चात् अपने प्रभु से यही प्रार्थना सदैव करता हूँ –

भगवान् मेरी नैया, अब पार लगा देना
अब तक तो निभाया है, आगे भी निभा लेना।

मैंने अपने प्रारम्भिक (रफ) व्याख्यान को भगवान् श्रीराम जी के पवित्र जन्मदिन श्रीरामनवमी २०६९ (01 अप्रैल 2012) तक पूर्ण करने का लक्ष्य बनाते हुए मन में यह विचार किया था– ''हे प्रभो! यदि मैं अपने प्रारम्भिक व्याख्यान को श्रीरामनवमी तक पूर्ण न कर सका तो मैं अपने लक्ष्य को भी अपनी समयावधि में पूर्ण करने के प्रति संदेह में पड़ जाऊँगा।'' मेरे प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुनी और मैंने व्यायामजनित रीढ की चोट को सहते हुए भी अति परिश्रम करके चैत्र कृष्णा ६/२०६९ को अर्थात् निर्धारित समय से 18 दिन पूर्व ही पूर्ण कर लिया और इस पुस्तिका को महान् वेदवेदांगवेत्ता, पूर्ण स्थितप्रज्ञ, महायोगिराज, महाजितेन्द्रिय, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम जो न केवल इस आर्यावर्त राष्ट्र के अपितु विश्व भर के नायक व आदर्श हैं, की स्मृति एवं इस युग के महान् वेदद्रष्टा भगवत्पाद महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की पावन भावना के अनुसार उनके प्रति अपने अत्यन्त श्रद्धोपेत हृदय से भगवान् श्रीराम वा ऋषियों वा वैदिक परम्परा के पवित्रहृदय भक्तजनों एवं सत्य–धर्म–विज्ञान के पिपासु मानव मात्र की सेवा में समर्पित करता हूँ।

चैत्र शुक्ला,श्रीरामनवमी २०६९,
रविवार (01 अप्रेल 2012)

मां मानवता का विनम्र सेवक
अग्निव्रत नैष्ठिक

पूर्व पीठिका

मेरे आदरणीय महानुभाव! 10 अक्टूबर 2004 से वेद विज्ञान अनुसंधान का औपचारिक अनुसंधान प्रारम्भ करके मैंने चैत्र कृष्णा (दक्षिण भारत में फाल्गुन कृष्णा) ६/२०६८ विक्रम सं. तदनुसार 13 मार्च 2012 को अपने कार्य का प्रथम चरण पूर्ण कर चुका हूँ। अपना कार्य प्रारम्भ करते समय मुझे आर्य जगत् के किसी भी विद्वान् से यह मार्गदर्शन नहीं मिला कि मैं अपना कार्य कैसे प्रारम्भ करूं? अपना कार्य प्रारम्भ करने से लगभग 6 वर्ष पहले से वेद गोष्ठियों में जाकर देखने पर वर्तमान में हो रहे वेद विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान कार्य से कोई संतुष्टि नहीं हुई। प्रति वर्ष आयोजित ऋषि मेला, अजमेर, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर में सन् 2000 में आयोजित राष्ट्रिय वेद गोष्ठी एवं अगस्त 2004 में बंगलोर में आयोजित वर्ल्ड कांग्रेस ऑन वैदिक सायंसेज में भी जाकर विद्वानों के विचार सुनने व अपने विचार रखने का अवसर प्राप्त हुआ। उस सब के अनुभव से मुझे विद्वानों एवं वैज्ञानिकों में प्रचलित निम्न विचारधाराओं का अनुभव हुआ—

1. अधिकांश विद्वान् वर्तमान विज्ञान से न केवल प्रभावित दिखायी दिये अपितु उसके सम्मुख दीन हीन बनकर उनका अन्धानुकरण करते भी दिखायी दिये। ऐसे विद्वानों को न केवल उच्च स्तरीय वैज्ञानिकों के अपितु सामान्य स्तर के वैज्ञानिकों के विचारों की वैदिक विज्ञान से पुष्टि करते देखा। मैंने यह भी देखा कि उन वैदिक विद्वानों को आधुनिक विज्ञान का कोई गम्भीर ज्ञान नहीं था, पुनरपि वे वैदिक विद्वानों में बड़े वेद विज्ञान अनुसंधानकर्ता के रूप में प्रस्तुत किये जा रहे थे।
2. कुछ वैदिक विद्वान् ऐसे भी मिले जिनकी आधुनिक विज्ञान में कोई रुचि दिखायी नहीं दी। पुनरपि वे वेद विज्ञान के नाम पर व्याकरण, निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर प्राचीन परम्परा को प्रस्तुत करने का प्रयास करते थे। वैदिक विज्ञान का प्रयोगात्मक रूप संसार के सम्मुख लाने का न तो उनका कोई प्रयोजन देखा और न इच्छा शक्ति। उनका कथित वैदिक विज्ञान किसी एक ग्रन्थ के आधार पर नहीं बल्कि ''कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा'' के अनुसार ही होता है। इसी शैली से अनेक विद्वानों ने वेद विज्ञान के नाम पर ग्रन्थ भी लिखे तथा पत्रवाचन भी किये परन्तु किसी एक ग्रन्थ का वैज्ञानिक भाष्य कभी देखा नहीं गया। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के पश्चात् पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर ही एक मात्र ऐसे विद्वान् दिखायी देते हैं, जिनका अध्ययन बहुत विशाल था। जिन्होंने न केवल प्राचीन भारतीय एवं वैदिक वाङ्मय के इतिहास का गंभीर अनुसंधान किया अपितु वैदिक वाङ्मय में अति उच्च पदार्थविज्ञान की भी ऊहा की, जिसको साकार करने का स्वप्न पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक जैसे वैदिक वाङ्मय के प्रौढ़ विद्वान् जीवन पर्यन्त करते रहे परन्तु अधिकांश आर्य जगत् ने इस विषय की उपेक्षा ही की। इस सम्बन्ध में मेरा मानना यह है कि अधिकांश विद्वान् वैज्ञानिक प्रतिभा से हीन हैं अथवा वे कम परिश्रम से बहुत फल पाना चाहते हैं। हाँ, इतना फिर भी कहूँगा कि पं. भगवद्दत्त जी की ऊहा व अनुसंधान कहीं भी स्पष्ट नहीं हो पाया है। वे व्यापक लेखन करते रहे परन्तु किसी एक ग्रन्थ को भी स्पष्ट व्याख्यात नहीं कर सके। इस कारण उनका हर ग्रन्थ पुनः स्पष्ट व्याख्या चाहता है। हाँ, उनके ग्रन्थों से कोई भी प्रतिभाशाली अनुसंधाता विद्वान् प्रेरणा अवश्य ले सकता है। मुझे तो महर्षि जी के पश्चात् इन्हीं के ग्रन्थों से सर्वाधिक प्रेरणा मिली है, भले ही वह सांकेतिक ही क्यों न हो। मैं कहीं–2 पण्डित जी की ऊहा से असहमत भी हूँ। पुनरपि उनके प्रति मेरे मन में अत्यन्त आदर का भाव है।
3. इस विचारधारा में वर्तमान विज्ञान के वे विद्वान् आते हैं, जिनकी वेद अथवा अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य एवं तज्जन्य संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान पर श्रद्धा तो है और वे इसी श्रद्धा के वशीभूत बड़े–2 आयोजन करके एवं योजनाएं बना करके सुसंगठित रूप से भारत के गौरव को विश्व में स्थापित करने का स्वप्न देखते हैं परन्तु वे भारतीय ग्रन्थों अथवा वेद आदि शास्त्रों को व्यवस्थित ढंग से पढ़ने का न तो पुरुषार्थ करना चाहते हैं और न धैर्य रखना चाहते हैं। उनकी सोच अधिकांशतः मध्यकालीन आचार्यों जैसे आर्यभट्ट, वराहमिहिर एवं भास्कराचार्य आदि तक ही सीमित है। कहीं–2 महर्षि भरद्वाज एवं कणाद का नाम भी ले लेते हैं। ये महानुभाव वर्तमान विज्ञान के कुछ सिद्धान्तों को उपलब्ध प्राचीन भारतीय साहित्य के हिन्दी अनुवादों में ढूंढ़ते हैं। विज्ञान भारती के मेरे अधिकांश मित्र इसी शैली से काम कर रहे हैं। लगभग 4–5 वर्ष पूर्व अटलाण्टा विश्वविद्यालय, यू.एस.ए. में गणित के प्रोफेसर डा. भूदेव जी शर्मा ने भी मुझे इसी शैली से अनुसंधान करने का सुझाव दिया था। इनमें एक भयंकर दोष यह है कि ये किसी अन्य पद्धति के अनुसंधाता की बात सुनने में विश्वास नहीं करते बल्कि अपनी

हठ के पक्के होते हैं, जो किसी भी सत्यशोधकर्ता को शोभनीय नहीं है। लगता है कि ये काम में कम नाम में विश्वास अधिक करते हैं।

4. इसके अतिरिक्त विद्या और विज्ञान की आधुनिक जगत्प्रसिद्ध परम्परा सर्व विदित है, ही। जिसे हम वैदिक अथवा भारतीय आदर्शों का अहंकार करने वाले मैकाले शिक्षा आदि कहकर निन्दा करते हैं, परन्तु इस शिक्षा के विकसित व विस्तृत ज्ञान–विज्ञान और टैक्नोलॉजी का पूरा लाभ उठाते हैं। ब्रह्मचारी से लेकर संन्यासी, धनी से लेकर निर्धन, उच्च शिक्षित से लेकर निरक्षर, राष्ट्र भक्त अथवा पाश्चात्य सभ्यता के भक्त, रोगी–भोगी अथवा योगी, बूढ़े–बच्चे व युवा, महिला वा पुरुष, सभी सम्प्रदायी, भाषायी वा सभी देशों के लोग इस वर्तमान ज्ञान–विज्ञान और तकनीक का पूरा लाभ उठा रहे हैं। ऐसी स्थिति में इस परम्परा की कोई भी उपेक्षा नहीं कर सकता। सारी दुनिया के वैज्ञानिक, शिक्षाविद्, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री आदि सभी इसी परम्परा को पुष्पित व पल्लवित कर रहे हैं। यह परम्परा किसी भी ग्रन्थ विशेष को प्रमाण नहीं मानती बल्कि यह केवल और केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानने का दावा करती है। जितना–2 प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध होता जाता है, उतना ही उतना उन्हें प्रमाण के रूप में स्वीकार्य होता है।

5. इस विचार धारा के प्रवर्तक अथवा मुख्य प्रचारक जयपुर के राजपण्डित मधुसूदन जी ओझा एवं उनके सुयोग्य शिष्य पं. मोतीलाल जी शास्त्री माने जा सकते हैं। इनकी विचारधारा प्रायः ब्राह्मण ग्रन्थों पर आधारित है। ये ब्राह्मण ग्रन्थों की वैज्ञानिक व्याख्या नाम से ऐसी क्लिष्ट व्याख्या करते हैं कि वह सारी व्याख्या अत्यन्त रहस्यपूर्ण तथा नितान्त अस्पष्ट हो जाती है। पण्डित मधुसूदन जी ओझा के विषय में वैदिक वाङ्मय के प्रौढ़ विद्वान् आचार्य विश्वश्रवा व्यास अपने ''ऋग्वेद महाभाष्यम्'' नामक ग्रन्थ में उन्हें वेदावतार की संज्ञा देते हैं। वहीं आर्य समाज के एक अन्य प्रौढ़ वैदिक विद्वान् पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक राजस्थान पत्रिका दैनिक 31 मार्च 1996 में पं. भगवद्दत्त रिसर्च स्कालर के द्वारा उन्हें चलता फिरता पुस्तकालय कहलाते हैं। श्री ओझा जी के विषय में पं. मीमांसक जी यह भी लिखते हैं कि वे किसी भी वैदिक वा पौराणिक परम्परा को स्वीकार नहीं करते थे। ये अपनी अहंकार भरी व्याख्या शैली में ब्राह्मण ग्रन्थों की काल्पनिक रहस्यमयी वैज्ञानिक व्याख्या करते थे। आज भी इस परम्परा के कुछ विद्वान् भारत में इसी काल्पनिक व्याख्या शैली का अनुकरण कर रहे हैं। श्री अरविन्द घोष की वैदिक अवधारणा भी प्रायः रहस्यमय व अस्पष्ट है।

अब हम इन पांचों विचारधाराओं पर क्रमशः संक्षिप्त समीक्षा लिखने का प्रयास करते हैं–

1. इस पद्धति में मुझे मुख्य दोष यह दिखायी देता है कि वे वर्तमान विज्ञान को वैदिक ग्रन्थों में बलात् थोपने का प्रयास करते हैं और इसके लिए वैदिक पदों का अर्थ करने में वे सामान्य व्याकरण के अतिरिक्त निरुक्त वा ब्राह्मण ग्रन्थ अथवा स्वयं वेदादि का कोई सुसंगत आधार लेने का प्रयास नहीं करते। वे यह भी नहीं सोचते कि वर्तमान विज्ञान प्रयोग करने के साधनों के सामर्थ्य के अनुसार संशोधित होता रहता है। तब आज जिस सिद्धान्त को वर्तमान विज्ञान के चकाचौंध से प्रभावित होकर किसी वेदादि शास्त्र में आरोपित करने का प्रयास करते हैं, वही सिद्धान्त यदि आगामी पीढ़ी द्वारा संशोधित हो जाये तब हमारे वैदिक पदों के उन अर्थों का क्या होगा? जिनको हमने पूर्व सिद्धान्त के आधार पर निर्धारित किया था। यदि हम भी उसे संशोधित करें तो हमारे उस संशोधन का आधारभूत कारण क्या होगा? जबकि उनके संशोधन का आधार उनके प्रयोग व प्रेक्षण होते हैं। क्या हमारे संशोधन का आधार केवल वैज्ञानिकों की नकल ही होगी? वैज्ञानिक तो कठोर परिश्रम करते हैं परन्तु ये विद्वान् बिना परिश्रम ही फल की कामना से नकल पर ही दृष्टि जमाये रहते हैं। दूसरा दोष इस पद्धति में यह दिखायी देता है कि इससे वैदिक ज्ञान–विज्ञान के प्रति स्वाभिमान और सम्मान का उचित भाव उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि अनुकरण करने की प्रवृत्ति हमारे अन्दर हीन एवं पराधीनता की भावना को ही जाग्रत करेगी, जिसको कदापि श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता। तीसरा दोष इस प्रणाली में यह माना जायेगा कि यह परम्परा वैदिक ऋषियों की मौलिक परम्परा के अनुकूल नहीं होगी क्योंकि यह केवल ''मुंडे–मुंडे मतिर्भिन्ना'' के आधार पर स्वच्छन्द विचरेगी। जिसके आधार पर किसी भी क्रमबद्ध एवं सुसंगत भारतीय वैदिक वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली का आविष्कार नहीं हो सकेगा। घुणाक्षर न्याय से कुछ पाने का प्रयास चलता रहेगा।

2. इस पद्धति पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि इस पद्धति के विद्वान् ऐसी भाषा में अपने विज्ञान को प्रकाशित करना चाहते हैं, जिसे आधुनिक कोई व्यक्ति समझता ही नहीं और न जिसको प्रयोगशाला में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस कारण से इस पद्धति पर प्रवचन व पत्रवाचन करके अपने ही सम्प्रदाय के विद्वानों में प्रतिष्ठा और दक्षिणा तो प्राप्त की जा सकती है परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से हम पूर्णतः पाश्चात्य विज्ञान पर ही निर्भर रहने को विवश होते हैं। फिर भी हम वैदिक ज्ञान–विज्ञान की प्रतिष्ठा हेतु नहीं बल्कि अपनी प्रतिष्ठा

और आजीविका के लिए वैदिक विद्या को पूर्ण व श्रेष्ठ एवं पाश्चात्य विद्या को अपूर्ण एवं हीन सिद्ध करने में पूरा मिथ्या छल, बल लगाते हैं। आर्ष शिक्षा प्रणाली की वकालत करते हुए भी अपनी संतान को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से संचालित पाश्चात्य शिक्षा के विद्यालयों में ही पढ़ाने में गौरव अनुभव करते हैं। इससे यह सिद्ध स्वतः ही होता है कि उनके अन्दर कहीं न कहीं यह विचार छुपा होता है कि वैदिक विज्ञान अव्यवहारिक, अनुपयोगी और कल्पना मात्र है। यही कारण है कि आज आर्य समाज अथवा पौराणिक सम्प्रदायों के गुरुकुलों से विद्या का प्रकाश होता कहीं भी प्रतीत नहीं होता। इस विचारधारा में कुछ ऐसे स्वयम्भू मनचले योगी भी देखे जाते हैं जो पदार्थ विज्ञान को मानव के चरम लक्ष्य में सबसे बड़ी बाधा बतलाते हैं, जबकि वे स्वयं इस आधुनिक पदार्थ विज्ञान की उच्चतम टैक्नोलॉजी का प्रयोग दैनिक जीवन में जन सामान्य की अपेक्षा बहुत अधिक कर रहे होते हैं। ये कथित विद्वान् इतना भी नहीं विचारते कि जो वेद 'विष्णोः कर्माणि पश्यत' कहकर सृष्टि को जानने का आदेश देता है। महर्षि भगवन्तों ने न केवल अध्यात्म विद्या के चरम स्तर को प्राप्त किया था अपितु चरम स्तर के पदार्थविज्ञान को भी विकसित करते हुए महान् साहित्य लिखा था। महर्षि दयानन्द जी महाराज योगविद्या में पारंगत होकर भी विद्या की पिपासा में जीवन भर अध्ययन करते रहे। जर्मनी के वैज्ञानिक प्रो. जी. वाइज से पत्र व्यवहार होता रहा परन्तु आज स्वयम्भू योगी वेदविद्या व वर्तमान विज्ञान दोनों को अनावश्यक बताकर आर्यों को मूर्ख बना रहे हैं। वे अपनी दुर्बलता को छुपाने के लिए वेदविद्या को ही अनावश्यक बता देते हैं। जब योगदर्शनकार ने शास्त्र अर्थात् वेद की अनिवार्यता स्वीकार की तो कौन योगी कहलाने वाला वेदाध्ययन को अनावश्यक कहने की मूर्खता करेगा? इधर विज्ञान जिसके बिना जीवन का निर्वाह भी सम्भव नहीं, उसका विरोध मूर्खता की पराकाष्ठा है। हम जानते हैं कि जैन ग्रन्थों में कृषि, बागवानी, कूप खोदना, चूल्हा जलाना पाप कहा है। जैन साधु इनका पूर्ण पालन करते हैं परन्तु उनके भक्त ये सब करते हुए भी उन साधुओं का पेट भरते हैं। वैसे ही हमारे यहाँ भी ये साधु बाबा हो गये। जिनके लिए आंख बंद करना ही मुख्य लक्ष्य है। वेद पढ़ना, विज्ञान पढ़ना, व्यापार–कृषि करना सब अनावश्यक है। इतने पर उनके भक्त इन कामों से ही धन अर्जित करके उन विद्वानों को दान–दक्षिणा देते हैं। वे भोले भाई यह नहीं जानते कि धर्म व विज्ञान दोनों समानार्थक शब्द हैं। महर्षि कणाद जी अपने वैशेषिक दर्शन में धर्म की व्याख्या की प्रतिज्ञा करके लौकिक उन्नति व मुक्ति दोनों का साधक धर्म को बताते हुए पदार्थविज्ञान का विशद विवेचन करते हैं। पता नहीं कैसे ये महानुभाव वैशेषिक दर्शन को पढ़ते व पढ़ाते हैं? महर्षि दयानन्द जी 'यज्ञ' पद का अर्थ 'शिल्पविज्ञान' करते हुए सर्वत्र विज्ञानादि ऐश्वर्य को पाने की चर्चा करते हैं परन्तु ये विज्ञान से दूर रहने का उपदेश देते हैं, महदाश्चर्य। इसी विचारधारा के कुछ विद्वान् वैदिक ग्रन्थों में से इलेक्ट्रॉन, प्रोटान आदि की विद्यमानता की बात करने वाले का बड़ा उपहास करते हैं। मेरी दृष्टि में उनका यह अज्ञान वा द्वेषजन्य महान् दोष है। क्या वे इतना भी नहीं जानते कि सृष्टि सभी के लिए एक जैसी ही है, तब वर्तमान विज्ञान जो अपने प्रयोगात्मक बल पर सर्वत्र प्रसिद्धि पा रहा है, वह विज्ञान हमारे ग्रन्थों में उसी रूप में क्यों नहीं होगा? यदि कोई व्यक्ति किसी विदेशी को समझाने के लिए भारतीय इतिहास में Cow, elephant, Horse की विद्यमानता को सिद्ध करे तो क्या किसी वैदिक विद्वान् को ऐसे अनुसंधान कर्ता पर व्यंग करने चाहिए? यदि हाँ, तो अपने कथित विज्ञान को क्या अपनी तिजोरी में ही बन्द करके रखा जाये? मेरा स्पष्ट मत है कि भाषा के भेद से सृष्टि प्रक्रिया में भेद नहीं हो सकता, जिसको वर्तमान विज्ञान इलेक्ट्रॉन कहता है और इस इलेक्ट्रॉन के आधार पर संसार में विकसित इलेक्ट्रॉनिक्स के सिद्धान्त, वर्तमान उच्च तकनीक को व्यापक और प्रसिद्ध बना रहे हैं। इस कारण यह इलेक्ट्रॉन कोई काल्पनिक सत्ता नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि हम अपने वैदिक वाङ्मय में सम्पूर्ण सृष्टि के ज्ञान का दावा करें तो उसमें इलेक्ट्रॉन आदि का किसी दूसरे नाम से विद्यमान होना अवश्यम्भावी है। इसलिए हमें किसी भाषा और विज्ञान की किसी भी परम्परा का यूँ अन्धा विरोध नहीं करना चाहिए। साथ ही किसी भी ईर्ष्याजन्य विरोध का पाप नहीं करना चाहिए। जहाँ कहीं मेरे प्रश्नों में इलेक्ट्रॉनादि के स्तर पर दिशा का प्रश्न है, तो ये विद्वान् मेरे दिशा सम्बन्धी प्रश्न पर उपहास करते हैं कि वहाँ इतने सूक्ष्म स्तर पर दिशा कहाँ से तय होगी? उनको प्रतीत होता है कि दिशाएं सूर्योदय से निर्धारित होती हैं। मैं ऐसे बन्धुओं को कैसे समझाऊँ कि सूक्ष्म कणों के संसार में दिशा निर्धारण सूर्य से नहीं बल्कि उन कणों के दक्षिणावर्त–वामावर्त घूर्णन से तय होती है और उन प्रश्नों में ऐसी ही दिशा से मेरा तात्पर्य है। जब ये विद्वान् समझना न चाहें, तो उनसे माथापच्ची का समय भी मेरे पास कहाँ है?

3. इस शैली में मुख्य दोष यह है कि ये विद्वान् वर्तमान विज्ञान तो जानते हैं परन्तु वैदिक ज्ञान–विज्ञान के निकट नहीं पहुँच पाते। इनको यह भी स्पष्ट ज्ञान नहीं होता कि वैदिक ज्ञान–विज्ञान की परम्परा कहाँ से और किस

प्रकार प्रारम्भ होती है? वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, निरुक्त आदि से तो वे सर्वथा दूर ही रहते हैं। केवल कुछ ग्रन्थों के हिन्दी भाष्यों के आधार पर आधुनिक विज्ञान की कुछ संगति लगाने पर ही वे अपने को कृत–कृत्य समझने लग जाते हैं। इस शैली में भी वे प्रायः सभी दोष विद्यमान प्रतीत होते हैं, जो प्रथम शैली में हमने बताये हैं।

4. इस परम्परा में यद्यपि इतने गुण हैं, जिसके कारण इसकी विजय पताका सम्पूर्ण भू–मण्डल में फहरा रही है और जिसके तेज के कारण हर प्रकार की विचारधारा का तेज क्षीण हो गया है। बड़े–2 कट्टर मजहबी विचार भी इस विचारधारा के आगे अपनी–2 कट्टरता को त्याग कर साथ–2 पढ़ते–बढ़ते दिखायी देते हैं। कुरान, बाईबिल एवं पुराणों की अनेकों विज्ञान विरुद्ध कल्पनाएं भले ही धर्म कथाओं, सभाओं एवं जलसों में खूब प्रचारित की जाती हों और पूर्व काल में जिसका विरोध करने पर कट्टरपंथियों ने बड़े–2 वैज्ञानिकों और समाज सुधारकों को भले ही प्राण दण्ड दिये गये हों, परन्तु आज उन्हीं विचारधाराओं को कट्टरपंथी रूढ़िवादी भी उत्साह के साथ पढ़ रहे हैं। यह इस विचारधारा की सबसे बड़ी जीत है। यह विचारधारा कथित जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, भाषा एवं देश से ऊपर उठकर सकल विद्या और विज्ञान के विश्व की एक मात्र साम्राज्ञी बन गयी है। आज का प्रबुद्ध वर्ग, मीडिया सभी कोई वैज्ञानिक सोच की दुहाई देते हुए हर प्राचीन परम्परा को इसी की कसौटी पर कसने की अनिवार्यता पर बल देते हैं। इसके विरुद्ध किसी विचारधारा को रूढ़िवादी और पाखण्ड बताकर तिरस्कार और उपहास का पात्र बनाया जाता है। यद्यपि कट्टर मजहबी लोग आज भी दो घोड़ों पर एक साथ सवार होने का प्रयत्न करते हैं परन्तु ऐसे लोगों की प्रामाणिकता नहीं मानी जाती। यह बात सत्य है कि आज इस विचारधारा ने सम्पूर्ण मानव जाति को एक सार्वभौम मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया है एवं अनेक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी की है। परन्तु यह पद्धति भी पूर्णतः निर्दोष व निरापद नहीं है। इसके कुछ निम्नलिखित कारण विचारणीय है–

(क) इस पद्धति में ईश्वर अथवा आत्मा जैसी सत्ताओं पर कोई विचार नहीं किया जा सकता। जिस कारण नैतिकता, कर्मफल व्यवस्था, धर्मादि का कोई स्थान नहीं होता। जिसके कारण **उत्कट भोगलिप्सा, गलाकाट प्रतिस्पर्धा, प्रकृति का अपार दोहन होने से पर्यावरण असंतुलन के साथ काम, क्रोध, क्रूरता, स्वार्थपरता आदि का प्राबल्य बढ़ता जाता है। जिसके कारण कठोर पुरुषार्थ, अपने कार्य के प्रति ईमानदार–व्यवहार आदि सद्गुणों से सुभूषित अनेक विकसित देशों व समाजों में भी अशान्ति, असन्तोष, अवसाद, स्वेच्छाचारिता जैसे गम्भीर दोष भरे होते हैं।** जिसके कारण सम्पूर्ण सुख–सुविधाओं का भोग करते हुए भी यह विज्ञान हमें सुख, आनन्द और शान्ति प्रदान करना तो दूर बल्कि इनको नष्ट–भ्रष्ट ही कर रहा है।

(ख) यद्यपि यह परम्परा प्रयोगात्मक निष्कर्षों पर आधारित होती है पुनरपि यह दावा करना कि वे निष्कर्ष पूर्णतः सत्य हैं, सर्वथा उचित नहीं। हम लोग प्रयोग करने के जितने परिष्कृत उपकरण आविष्कृत करते जायेंगे, हमारी गणनाएं उतनी ही परिवर्तित वा संशोधित होती चली जायेंगी और इसी प्रकार किसी सिद्धान्त को प्रयोगात्मक पुष्टि के लिए यदि हमारे पास आवश्यक एवं पर्याप्त संसाधन न हों, तब हम उस सिद्धान्त को भले ही वह शत प्रतिशत सत्य हो, को असिद्ध ही मानने को विवश होंगे। इसी प्रकार के कई कारणों को ध्यान में रखकर ही विश्व प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री स्टीफन हॉकिंग अपनी पुस्तक 'A Briefer History of Time' के पेज नं. 14 पर लिखते हैं– "Any physical theory is always provisional in the sense that it is only a hypothesis : you can never prove it. No matter how many times the results of experiments agree with some theory: you can never be sure that the next time a result will not contradict the theory. On the other hand, you can disprove this theory by finding even a single observation that disagrees with the predictions of the theory." प्रत्येक भौतिकीय सिद्धान्त सदैव अनन्तिम ही होते हैं, अनुमान पर आधारित होते हैं। हम उसे कभी प्रमाणित नहीं कर सकते। इस बात का कोई महत्व नहीं कि कितनी बार किये गये प्रयोगों के परिणाम उस सिद्धान्त से सहमत हैं। हम कभी पूर्ण आश्वस्त नहीं हो सकते कि अगली बार किये गये प्रयोग का परिणाम हमारे सिद्धान्त का खण्डन नहीं करेगा। दूसरी तरफ आप मात्र एक प्रेक्षण से जो सिद्धान्त के अनुकूल न हों, उस सिद्धान्त को असिद्ध कर सकते हैं।

इसी प्रकार इनके साथी Roger Penrose अपनी पुस्तक 'Road to Reality' में लिखते हैं– "One might have thought that there is no real danger here, because if the direction is wrong then the experiment would disprove it, so that some new direction would be forced upon us. This is the traditional picture of how science progresses .... But I fear that this is too stringent a criterion, and definitely too idealistic a view of science in this modern world of 'big science'."(Page 1020) कोई ऐसा भी सोच सकता

है कि यहां कोई वास्तविक खतरा नहीं है। क्योंकि यदि दिशा गलत है तो प्रयोग उसे असिद्ध कर देगा। जिससे हम नई दिशा में जाने को मजबूर होंगे। यही पारस्परिक तस्वीर है कि विज्ञान कैसे विकास करता है? .... किन्तु मुझे डर है कि यह अत्यधिक कठोर, मानकीकृत एवं निश्चित रूप से अत्यधिक आदर्शवादी है। आधुनिक युग में विज्ञान का दृष्टिकोण 'Big Science' 'महाविज्ञान' का है।

प्रयोग, परीक्षण और प्रेक्षणों के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान, गणित के आश्रय पर भी आगे बढ़ता है। इस कारण यह विज्ञान तर्क एवं शब्द प्रामाण्य को महत्व नहीं देता। जबकि वैदिक वाङ्मय में इनका भी अपना बहुत बड़ा महत्व है। जिस प्रकार सब कुछ प्रयोग और प्रेक्षणों से जानना असम्भव है जैसा कि उपर्युक्त वैज्ञानिक उद्धरणों से स्पष्ट है। उसी प्रकार सृष्टि के समस्त ज्ञान को यह मानव जाति अवश्य ही गणितीय संकल्पनाओं में बाँध सकेगी एवं गणितीय संकल्पनाओं से सिद्ध सिद्धान्तों को अवश्य ही सत्य माना जाये, यह आवश्यक नहीं है। जैसा कि Roger Penrose पुनः उसी पुस्तक में लिखते हैं– "But, what is a mathematical proof? A proof in mathematics is an impeccable argument using only the methods of pure logical reasoning which enables one to infer the validity of other mathematical assertions or the *axioms* from some particular primitive assertions – whose validity is taken to be self evident (Page 10). गणितीय प्रमाण क्या है? गणित में एक प्रमाण त्रुटिहीन तर्क है, जो केवल शुद्ध युक्तिसंगत का है। तार्किक आधार का प्रयोग करता है। जो किसी को किसी अन्य निश्चित सिद्धान्तयुक्त वाक्य की वैधता को निष्कर्षयुक्त करने में अथवा किसी पूर्ण निश्चित स्वप्रमाणित वैधता वाले निष्कर्ष तक पहुंचने में काम आता है।

इसी विषय में पार्टिकल फिजिक्स में नोबेल पुरस्कार विजेता R.P. Feynman लिखते हैं– "But mathematical definitions can never work in the real world. A mathematical definition will be good for mathematics in which all the logic can be followed out completely, but the physical world is complex" (Lectures on Physics, Volume 1, page 148). किन्तु गणितीय परिभाषाएं वास्तविक जगत् में काम नहीं कर सकती, गणितीय परिभाषा गणित के लिए अच्छी हो सकती है। जिसमें सभी तर्क पूर्णता के साथ अनुसरित किये जा सकते हैं। किन्तु भौतिक जगत् जटिल है।

इस प्रकार विश्व के इन महान् वैज्ञानिकों के द्वारा अपनी परम्परा की न्यूनताओं को स्वीकार करना जहॉं इस बात का सूचक है कि वर्तमान विज्ञान पूर्णतः निर्दोष एवं सब ओर से परिपूर्ण परम्परा का नेतृत्व नहीं करती है, भले ही इसमें अपने सिद्धान्तों को प्रयोग और तकनीक के पंख देकर न केवल अत्यन्त सूक्ष्म कणों के संसार से लेकर अति विशाल पृथिवी अपितु लोक लोकान्तरों तक व्यापक उड़ान भरी है। वहीं उपर्युक्त उद्धरण इस बात के भी प्रमाण हैं कि आधुनिक महान् वैज्ञानिक भले ही वे किसी ईश्वर, आत्मा, धर्म, नैतिकता पर व्याख्यान देने वाले न हों पुनरपि वे अपनी न्यूनताओं की स्पष्ट एवं विनम्र घोषणा करने में कथित धर्माचार्यों से बहुत आगे हैं। उनकी इस प्रवृत्ति का संसार के हर एक सभ्य मानव को अनुकरण करना चाहिए। हाँ, फिर भी मैं यह भी स्पष्ट स्वीकार करता हूँ कि प्रयोग, परीक्षण व गणित ये तीनों किसी भी वैज्ञानिक परम्परा के लिए अनिवार्य आधार हैं। इनके बिना कोई भी वैज्ञानिक परम्परा न तो आगे बढ़ सकती है और न व्यवहारिक ही हो सकती है, बल्कि इसके बिना वह भी व्यर्थ वाग्विलास तक ही सीमित रह जायेगी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन तीनों का महत्व सिद्ध है।

(ग) इस पद्धति में वैज्ञानिकों के पास ज्ञान का कोई ऐसा स्रोत नहीं होता, जिसको सम्मुख रखकर वे अपने प्रयोग ओर परीक्षणों को नित नये आयाम दे सकें। वे सृष्टि में हो रहे विभिन्न घटनाक्रमों, विभिन्न प्राणियों और वनस्पतियों की गतिविधियों को देखकर ही अन्धेरे में मार्ग तय करते हुए आगे बढ़ने को विवश होते हैं। फिर चाहे महान् वैज्ञानिक न्यूटन को सेव गिरने की घटना अथवा भाप के द्वारा ढक्कन उठने की घटना से जेम्स वॉट को भाप की शक्ति की प्रेरणा मिली हो। यदि इन वैज्ञानिकों के पास विद्या का कोई प्रामाणिक आद्य स्रोत उपलब्ध होता जिनमें सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का संकेत मात्र भी उपलब्ध होता तो इन वैज्ञानिकों को अपने–2 आविष्कारों के लिए इतना परिश्रम व ऊहा नहीं करनी पड़ती। इसके साथ ही इनकी प्रणाली में बुद्धि को निर्मल, सूक्ष्म व सात्विक बनाने हेतु उचित आहार, व्यवहार व योग–ध्यान आदि का कोई स्थान नहीं होता, **जबकि इसके आधार प्राचीन भारतीय ऋषि–मुनि अपने योग बल के द्वारा ही सृष्टि के सूक्ष्म व गम्भीर रहस्यों का उद्घाटन करते थे। फिर उनको एक अलग प्रकार की टैक्नोलॉजी में परिवर्तित भी करते थे।** आज मुझसे कुछ महान् वैज्ञानिक प्रश्न करते हैं, आपकी शैली क्या है? मैं उनसे निवेदन करूँगा कि ऋषियों की मूल शैली यही रही है।

5. ओझा जी व पं. शास्त्री जी के लेखों और उनके एक–दो ग्रन्थ का विहंगावलोकन करने से यह अनुभव हुआ कि ये दोनों विद्वान् वास्तव में असाधारण स्मरण शक्ति के भण्डार थे। उनकी कल्पना शैली भी बहुत व्यापक थी।

अनेक ग्रन्थ उनको कण्ठस्थ भी थे परन्तु वे किसी भी ग्रन्थ अथवा उसके किसी उद्धरण विशेष को भी स्पष्ट नहीं कर पाये। वे क्या कहना चाहते थे, यह वे भी जानते थे वा नहीं, यह भी संदिग्ध है। बहुधा 'प्राण' शब्द का प्रयोग करते हुए वे कल्पनाओं का ऐसा जटिल जाल बुनते हुए प्रतीत होते हैं कि कोई भी उनका पाठक उसमें फॅसकर कदाचित् ही निकल सके। मैंने इस विषय में सम्भवतः सन् 2000 में ''रहस्यवादी वैदिक अवधारणा – एक समीक्षा'' नामक लेख लिखकर पं. ओझा सम्प्रदाय के अनेक विद्वानों को भेजा था परन्तु वे सभी मौन साधे रहे। यद्यपि जिस व्यंगात्मक शैली से मैंने इस विचारधारा का खण्डन उस समय किया था, उससे आज मैं पूर्ण सहमत नहीं हूँ, पुनरपि मैं यह अनुभव अवश्य करता हूँ कि यह विचारधारा सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को एक ऐसे अंधेरे घनघोर जंगल में जाकर खड़ा कर देती है, जहाँ चलने के लिए पगडंडिया तो बहुत हैं, परन्तु वे कहाँ जाती हैं यह किसी को ज्ञात नहीं और न वे स्पष्ट दृष्टिगोचर ही होती हैं। पुनरपि अपने ऐतरेय व्याख्यान के प्रारम्भिक चरण (रफ) के पूर्ण होने पर मैं यह हृदय से अनुभव करता हूँ कि ओझा जी ने ब्राह्मण ग्रन्थों में महान् वैदिक विज्ञान को देखने का महान् प्रयत्न किया था। वे ब्राह्मण ग्रन्थों के जटिल भावों को अपनी कल्पना शैली में वैज्ञानिक ढंग से समझने का प्रयत्न तो कर रहे थे परन्तु उनको आधुनिक विज्ञान का कोई ज्ञान न होने के कारण अथवा उनकी बुद्धि वैज्ञानिक न होने के कारण एवं निष्कामता, ईश्वर प्रणिधान और योग साधना के अभाव में वे प्राण आदि शब्दों के स्वरूप को पूर्णतया स्पष्ट न कर सके, जिससे उनका विज्ञान न केवल साधारण पाठकों के लिए अपितु बहुश्रुत विद्वानों के लिए भी खपुष्पवत् व्यर्थ हो गया, तो किसी के लिए क्लिष्ट और परिष्कृत भाषा के कारण अन्धश्रद्धा का कारण हो गया, जिसका कोई भी व्यवहारिक उपयोग नहीं हो सकता।

मेरे मान्य पाठक! मैंने उपर्युक्त पांचों विचारधाराओं के गुण और दोषों पर विचार करके यह अनुभव किया कि मानव जाति का पूर्णहित इनमें से कोई एक विचारधारा करने में सक्षम एवं पूर्ण सत्य नहीं है। मैंने आधुनिक युग के महान् वेदद्रष्टा एवं वैज्ञानिक प्रतिभा के धनी महर्षि दयानन्द जी सरस्वती महाराज के ग्रन्थों, उनके वेद भाष्यों में पदार्थ विज्ञान एवं आध्यात्मिक विज्ञान के प्रति समन्वयात्मक दृष्टि के साथ–2 विश्व मानवता एवं राष्ट्रिय गौरव की भावना को देखा। वाल्मीकि रामायण और महाभारत जैसे ऐतिहासिक महाकाव्यों में ऋषि–मुनियों एवं महापुरुषों के अत्यन्त उच्च चरित्रों के साथ–2 उनकी महती टैक्नोलॉजी के संकेतों को भी देखा। इससे मन में प्रश्न उठा कि प्राचीन वैदिक काल में ऐसा कौन सा पदार्थ विज्ञान था, ऐसी कौन सी शिक्षा प्रणाली थी जहॉ पदार्थ विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों साथ–2 चला करते थे। जहॉ की टैक्नोलॉजी पूर्ण निरापद थी, पर्यावरण स्वस्थ व सुरक्षित था, सभी समृद्ध, स्वस्थ, निरोग, सुखी और चरित्रवान् थे। जहॉ भौतिक ऐश्वर्य, वैराग्य, व्यक्तिगत–पारिवारिक–सामाजिक–राष्ट्रिय–वैश्विकहित आदि का सुन्दर समन्वय था। इस पर विचार करने पर यह निश्चय हुआ कि ऋषियों की वेद विज्ञान की प्रणाली महाभारत युद्ध के कुछ काल पश्चात् लुप्त होती चली गयी और जिसे पुनः सही स्वरूप में देखने का सामर्थ्य केवल और केवल महर्षि दयानन्द जी सरस्वती को ही प्राप्त हुआ। भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य जी महाराज जैसे महान् योगी एवं प्रतिभाशाली महापुरुष भी यहॉ जन्मे परन्तु वे भी अल्पायु में चले जाने से वैदिक विद्या का विशेष प्रकाश न कर सके। यद्यपि इस मध्य काल में आचार्य सायण आदि बहुश्रुत वैदिक विद्वान् इस भारत में जन्मे परन्तु ऋषि–मुनियों अथवा वेद के विज्ञान को समझने का सामर्थ्य उनमें नहीं था, यद्यपि उन्होंने विशाल वैदिक वाङ्मय को भले ही भ्रष्ट किया हो परन्तु सुरक्षित अवश्य रखा। इसी प्रकार वेदपाठी ब्राह्मणों ने यद्यपि वेदार्थ नहीं समझा तदपि वेद को सुरक्षित अवश्य रखा। इसके लिए समस्त मानव जाति को इनका ऋणी अवश्य रहना चाहिए। मैंने यह भी अनुभव किया कि आर्य समाज के अधिकांश विद्वानों ने महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की भावनाओं को व्यापक रूप में नहीं समझा। उन्होंने महर्षि जी के सामाजिक और राष्ट्रिय सुधार कार्यों को तो पर्याप्त महत्व दिया परन्तु उनके वेद विज्ञान के संकेतों को समझने का पूर्ण प्रयत्न नहीं किया। **जिस प्रकार वेदपाठी ब्राह्मणों का वेद पाठ करना आजीविका का विषय बन गया, उसी प्रकार आर्य समाजी विद्वानों का भी अधिकांशतः मनमाना और लोकलुभावन वेदोपदेश जीविका का विषय मात्र बनकर रह गया। जिस प्रकार आचार्य सायण वेद के यौगिक अर्थ तक न पहुंचकर रूढ़ार्थ (कर्मकाण्ड परक) तक सीमित रह गये। उसी प्रकार आर्य विद्वान् भी यौगिक अर्थों के क्षेत्र में बहुत दूर तक नहीं जा सके।** वे महर्षि जी के सांकेतिक वेद भाष्य, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के जटिल प्रकरणों को तो क्या समझते, उनके सरलतम एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के विषय में भी भ्रान्ति के शिकार हो गये और इसी भ्रान्ति अथवा मिथ्या अहंकारवश न केवल सत्यार्थ प्रकाश में मनमाने परिवर्तन करने लगे अपितु महर्षि की भाषा, भावना, वैज्ञानिकता एवं दार्शनिकता पर भी प्रश्न खड़े करने लगे। हमने कभी भी आत्मनिरीक्षण करने

का प्रयत्न नहीं किया, न किसी एक भी आर्ष ग्रन्थ का गम्भीर अध्ययन किया और न परमपिता परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण व सच्ची योगसाधना का ही अभ्यास किया और मात्र अपनी स्थूल बुद्धि के बल पर महर्षि भगवन्तों पर प्रश्न खड़े करने लगे। मेरे आर्य विद्वद्बन्धुओ! **जरा विचारो, कि थोड़े से समय में ही आपने अपने आदर्श आचार्य महर्षि जी के सत्यार्थ प्रकाश की ये दुर्दशा कर दी और निरन्तर करते जा रहे हैं, तब आप आर्ष ग्रन्थों के हजारों वर्ष से चले आ रहे प्रक्षेपों, परिवर्तनों तथा प्रचलित पुराणरचयिताओं की निन्दा करने के अधिकारी कैसे हो सकते हैं? सोचो, अपने आर्य समाज के संस्थापक आचार्य के आत्मा को कब तक दुःख दोगे?** मैं यह भी कहूँगा कि हमने कभी ईमानदारी से सोचने का यत्न नहीं किया कि महर्षि जी ने अपने वेद भाष्य के विषय में भ्रान्ति निवारण नामक पुस्तक में लिखा था–

''परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखने को मिला कि वेद भाष्य पूर्ण हो जाये तो निःसंदेह आर्यावर्त देश में सूर्य सा प्रकाश हो जायेगा जिसको मिटाने और झेंपने का किसी का सामर्थ्य न होगा क्योंकि सत्य का मूल ऐसा नहीं जिसको सुगमता से उखाड़ सके और कभी भानु के समान ग्रहण में भी आ जावे तो थोड़े ही काल में फिर उग्रह अर्थात् निर्मल हो जायेगा।''

क्या हमने महर्षि के इन वाक्यों पर कभी ईमानदारी से सोचने का प्रयास किया है कि हम आज कहाँ खड़े हैं? हमने महर्षि जी के इस दावे को कितना बल प्रदान किया है? हमारे आर्य समाज मन्दिरों में चलने वाले विद्यालय, डी.ए.वी. कॉलेज और स्कूल, सरकारी मान्यता प्राप्त गुरूकुल सभी मानो महर्षि के इस दावे पर व्यंग कर रहे हैं। कहिये! इसके लिए कौन उत्तरदायी है? किसने महर्षि की इस घोषणा को धूलि–धूसरित किया है? जहाँ कुछ आर्य विद्वान् महर्षि जी पर प्रश्न खड़े करते हैं, वहीं पर अन्य कुछ विद्वान् महर्षि जी को सम्पूर्ण रूप से समझे बिना प्राचीन वैदिक ऋषि–मुनियों, देवों, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों की अपेक्षा बहुत बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करके आर्य समाज को एक कट्टरपंथी सम्प्रदाय के रूप में प्रसिद्ध करने का प्रयास करते रहे व कर रहे हैं। यह बात स्वयं क्या महर्षि जी की भावनाओं के नितान्त प्रतिकूल नहीं है? **महर्षि जी कहा करते थे कि मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूँ, जो महर्षि ब्रह्मा से लेकर महर्षि जैमिनी पर्यन्त मानते चले आये हैं। परन्तु हमारे यहां प्रवचनों और लेखों में महर्षि ब्रह्मा, महादेव, भगवान् विष्णु, महर्षि नारद, देवर्षि बृहस्पति, महर्षि भरद्वाज, महर्षि अगस्त्य, देवराज इन्द्र, महर्षि ऐतरेय महीदास जैसे महान् वैदिक वैज्ञानिकों की कभी चर्चा तक भी नहीं होती।** हमने कभी यह भी सोचने का यत्न नहीं किया कि महर्षि जी का वेद भाष्य जिस प्रबल दावे और इच्छा के साथ किया गया था, उसकी पूर्ति इस पापी समाज ने नहीं होने दी। उस महामानव को वेद भाष्य करने के लिए एकान्त, शान्त वातावरण कहाँ मिला? उनके शरीर पर कितने आघात किये गये? कितने कामों में उन्हें उलझे रहना पड़ा? ऐसे में उन्होंने जो भी किया वह भी उनकी अलौकिक सामर्थ्य के कारण ही सम्भव हुआ? महर्षि जी का मानना था–

''ऐसा विस्तृत वेद भाष्य यदि मैं चारों वेदों पर करूँगा तो चारों वेदों के भाष्य करने में चार सौ वर्ष लगेंगे।'' (ऋग्वेद महाभाष्यम्, पृ.सं. 147, आचार्य विश्वश्रवा व्यास)

परन्तु क्या हम जानते हैं कि महर्षि जी को अपना वेद भाष्य करने के लिए निर्विघ्न 10 वर्ष का भी समय नहीं मिला। ऐसे में वे अपना वेद भाष्य विस्तृत व्याख्यान से प्रारम्भ करके भी सांकेतिक वेद भाष्य करने के लिए विवश हुए। जिसे समझना भी आर्य विद्वानों के लिए भी अत्यन्त कठिन हो गया है। कुछ विद्वान् अपनी व्यर्थ हठ वा अज्ञानतावश महर्षि के वेद भाष्य को सम्पूर्ण मानते हैं। मैं उनसे पूछता हूँ कि यदि यह भाष्य सम्पूर्ण है तो महर्षि का दावा कैसे अधूरा रह गया? वेदसूर्य का प्रकाश भूमण्डल में होना तो अति दूर की बात है, आपके परिवार व समाजों में भी मैकाले शिक्षा का चन्द्र प्रकाशमान हो रहा है। कहो, ऐसा क्योंकर हो गया? कौन दोषी है, इसका? क्यों अपनी हठ के कारण आप महर्षि का अपयश कर रहे हैं? मैं आपके मिथ्या हठ को दूर करने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगा– ''अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।।'' इस मंत्र से महर्षि जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में गणित विद्या को सिद्ध करते हैं, वहीं महर्षि जी इसी मंत्र की ऋ. ६/१६/१० में व्याख्या करते हुए विद्वानों के कर्तव्य बतलाते हैं, जबकि विद्वानों के कर्तव्य और गणित विद्या का कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे यह स्वतः सिद्ध है कि महर्षि इस मंत्र का गणित विद्या परक अर्थ भी जानते थे, परन्तु अपने वेदभाष्य में वो ऐसा समयाभाव के कारण नहीं कर सके। इस कारण मैं बलपूर्वक कहता हूँ कि महर्षि जी का वेदभाष्य सांकेतिक है। मेरे इस कथन पर अपनी भृकुटि मत तानो बल्कि उनके संकेतों पर चलकर वेद के रहस्यों को समझने का प्रयास करो।

प्रिय पाठक गण! इन सब बातों पर विचार करने से मुझे यह अनुभव हुआ कि जहाँ महर्षि जी कृत ग्रन्थों की महाव्याख्या करने की आवश्यकता है, वहीं उन्हीं की दृष्टि से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को देखकर वर्तमान उच्च स्तरीय विज्ञान के साथ यथासम्भव संगति लगाते हुए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास करने की महती आवश्यकता है, जिसे प्रयोगात्मक रूप देकर आगामी पीढ़ियां समस्त विश्व में प्राचीन वैदिक शिक्षा के यथार्थ और व्यवहारिक स्वरूप को प्रतिष्ठित कर सकें, जैसी कि महर्षि जी के वेद भाष्य में पदे–2 यह भावना दृष्टिगोचर होती है। महर्षि जी की इस पावन भावना के अनुसार उनके उत्तराधिकारी आर्य समाज में भी कहीं भी वेद का ऐसा कार्य न होते देख मैंने स्वयं एकाकी चलने का निर्णय लिया, जिसके लिए मीमांसा को छोड़कर शेष पाँच दर्शन, निरुक्त, महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थ, उपनिषद्, छन्दशास्त्र पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर एवं पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक के कुछ ग्रन्थों का विहंगावलोकन किया। इससे पूर्व मनुस्मृति, वाल्मीकि–रामायण, महाभारत, कुछ प्रचलित पुराण आदि का भी विहंगावलोकन कर चुका था। पाणिनीय व्याकरण का कुछ अध्ययन करने के साथ–2 आधुनिक भौतिक विज्ञान को कुछ–2 समझने का यत्न भी करता रहा। इन सभी ग्रन्थों में अपने लक्ष्य के अनुकूल बिन्दुओं को रेखांकित करता रहा। निरुक्त एवं वैशेषिक दर्शन में सबसे अधिक वैज्ञानिक संकेतों को अनुभव किया। इन सब ग्रन्थों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में सबसे प्राचीन ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन प्रारम्भ किया। यह ग्रन्थ अब तक पढ़े हुए सभी ग्रन्थों में सबसे अधिक जटिल और अस्पष्ट प्रतीत हुआ। मैंने महर्षि दयानन्द जी के विचारों से यह भी जाना कि वेद के सबसे निकट ब्राह्मण ग्रन्थ ही होते हैं। जिनको समझे बिना वेद को समझना सर्वथा असम्भव है। आर्य समाज अथवा पौराणिक जगत् में व्याकरण और दर्शनों के अनेक प्रौढ़ विद्वान् पैदा हुए हैं, भले ही इनका वैज्ञानिक प्रयोग दोनों ही विचारधारा के विद्वानों ने सीखने का प्रयत्न नहीं किया। पौराणिक विद्वानों के पास ऐसा कोई वेद भाष्य उपलब्ध नहीं है, जिससे उनकी बुद्धि वैज्ञानिकता में रमण कर पाये परन्तु हम आर्य समाजियों के पास महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के वेद भाष्यादि ग्रन्थों जैसा वैज्ञानिकता के संकेतों से भरा मार्गदर्शी साहित्य होते हुए भी व्याकरण वा दर्शनों की वैज्ञानिकता को समझ ही नहीं पाये, तो फिर इनका उपयोग वेद भाष्य में कैसे करते? व्याकरण और दर्शनों की वैज्ञानिकता की समझ के अभाव में निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों की वैज्ञानिकता को तो कैसे समझा जा सकता है?

मैंने ऐतरेय ब्राह्मण के विषय में आर्य समाज के अनेक परिचित प्रौढ़ विद्वानों से दूरभाष पर चर्चा की। परन्तु सभी ने ऐतरेय ब्राह्मण के विज्ञान के विषय में अपनी असमर्थता व्यक्त की। उसके पश्चात् मैंने इस महासागर में स्वयं ही उतरने का निश्चय किया और ऐसा करने के अलावा मेरे पास कोई विकल्प भी नहीं था। मैं अन्य विद्वानों की भांति यथातथा वेद का नाम लेकर अपना जीवन यापन करने में विश्वास नहीं करता था बल्कि जैसा हम वेद को मानते व कहते चले आये हैं, वैसा ही आज के वैज्ञानिक युग में सिद्ध करने के लिए कठोर व्रती हो चुका था। **जो मेरे व्रत पर व्यंग करते हैं, वे ऐसे ही महानुभाव हैं जिन्होंने न तो स्वयं कोई महान् व्रत लिया है और न महान् व्रतधारी ऐतिहासिक महापुरुषों के प्रति जिनके हृदय में किसी प्रकार का श्रद्धा का भाव है।** इस कारण मुझे हर परिस्थिति में ऐतरेय ब्राह्मण के महासागर में उतरना और उसे पार करने हेतु पूर्ण पुरुषार्थ करना अनिवार्य था अन्यथा मैं अपने लक्ष्य से हार मान बैठता और उसका परिणाम सभी जानते हैं कि क्या होता? इस ब्राह्मण ग्रन्थ के आचार्य सायण कृत भाष्य को देखा, डा. सुधाकर जी मालवीय के हिन्दी अनुवाद को देखा। इसके अतिरिक्त पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के भाष्य से प्रेरित एवं पं. वीरसेन जी वेदश्रमी से प्रशंसित आर्य विद्वान् आचार्य वीरेन्द्र मुनि जी शास्त्री के हिन्दी अनुवाद को देखा परन्तु किसी में कोई सार दिखायी नहीं दिया। तब मैंने स्वयं ही नवम्बर 2007 में अपना भाष्य करने का निश्चय किया। कुछ भाष्य करने के पश्चात् संतोष नहीं हुआ तो पुनः फा. कृ. त्रयोदशी वि. सं. २०६४ तदनुसार 5मार्च 2008 को इस ब्राह्मण का पुनः भाष्य करना प्रारम्भ किया। इसके बाद एक लेख ''ब्राह्मणग्रन्थानां वैज्ञानिकरहस्यम्'' लिखकर आर्य समाज और पौराणिक जगत् के मूर्धन्य माने जाने वाले वैदिक विद्वानों की सेवा में भेजा, जिससे वे महानुभाव मेरे भाष्य पर अपनी समीक्षा लिख सकें, उसकी स्वस्थ आलोचना कर सकें, जिससे आगे मैं उनके सुझाव और आलोचना को ध्यान में रखकर उचित संशोधन कर सकूँ, यही शैली महर्षि दयानन्द जी महाराज की भी थी। वे प्रारम्भ में अपने वेद भाष्य के नमूने अनेक विद्वानों को भेजा करते थे और उन विद्वानों की प्रतिक्रिया आने पर उचित समाधान दिया करते थे। परन्तु मेरे भाष्य पर आर्य समाज के केवल कुछ प्रौढ़ विद्वानों की प्रशंसा के अतिरिक्त कोई लिखित अथवा दूरभाष पर सुझाव वा आलोचना प्राप्त नहीं हुई। इसके कुछ काल पश्चात् पुनः एक लेख ''ऐतरेयब्राह्मणस्य वैज्ञानिकरहस्यम्'' शीर्ष आर्य विद्वानों की सेवा में भेजा, परन्तु फिर भी वही परिणाम रहा। तब मेरे पास सर्वथा एकाकी चलने के अतिरिक्त और विकल्प भी क्या था? आज जो विद्वद्बन्धु ये आक्षेप

करते हैं कि मैंने विद्वानों की समीक्षार्थ कुछ प्रकाशित नहीं करवाया, वे जरा ये तो बतायें कि दो—दो लेख केवल जो मेरे भाष्य पर ही आधारित थे तथा अन्य साहित्य, जिसमें मेरे कार्य और लक्ष्य की आवश्यकता और महत्ता प्रतिपादित थी, ''सृष्टि का मूल उपादान कारण'' जैसी विशुद्ध वैज्ञानिक पुस्तक भी सबको भेजी गयी थी, उन पर कुछ भी प्रतिक्रिया न व्यक्त कर सके, तब उनसे और क्या आशा की जा सकती है?

सृष्टि एवं वेद दोनों को समझना सरल नहीं

सृष्टि अपने विस्तार व सूक्ष्मता दोनों की दृष्टि से अत्यन्त जटिल व मानव मस्तिष्क के लिए पूर्ण विज्ञेय नहीं है, उसी प्रकार परमात्मा द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान को भी पूर्णतः जानना सरल नहीं है। पुनरपि वेदों में विद्यमान ज्ञान मानव के लिए ही है। इससे अधिक ज्ञान परमात्मा के पास ही है। सृष्टि को सामान्य व्यक्ति से लेकर विश्व के महान् वैज्ञानिक अपने–2 ढंग से देखते व समझने का प्रयास करते हैं। बिना सृष्टि को जाने मानव ही नहीं अपितु प्राणिमात्र जीवन भी नहीं जी सकता। हाँ, सब अपनी–2 क्षमता व आवश्यकतानुसार इसे जानते व प्रयोग में लाने का प्रयास करते देखे जाते हैं। सामान्य व्यक्ति अति स्थूल दृष्टि से सृष्टि को देखता है, जिससे उसके खान–पान, आहार–विहार, सन्तति निर्माणादि क्रियाएं कर सके। वहीं वैज्ञानिक सृष्टि की गहराइयों में जाकर देखने का प्रयास करता है और यह क्यों, कैसे व कब बनी? कैसे इसका संचालनादि हो रहा है? यह जानना वैज्ञानिकों का कार्य है, जन सामान्य का नहीं। इस कार्य में अनेकों भौतिक सिद्धान्त ज्ञात होते जाते हैं, जिनके आधार पर टैक्नोलॉजिस्ट नई–2 टैक्नोलॉजी का निर्माण करते हैं और जन साधारण उसका उपयोग करता है। इस प्रकार सबका अपना–2 स्तर है परन्तु इसे पूर्णतः कोई भी नहीं जान सकता, ऐसा मेरा मन्तव्य है। पुनरपि पूर्णता को जानने का प्रयास करना हर वैज्ञानिक का अनिवार्य धर्म है। **इस प्रकार उन वैज्ञानिकों का धर्म केवल उन्हीं के बुद्धि विलास के लिए नहीं होता अपितु समस्त मानव जाति की सुख सुविधाओं की जननी टैक्नोलॉजी का भी जनक होता है।** इस कारण जन सामान्य जो सृष्टि विज्ञान को नहीं समझता, वह भले ही न समझे परन्तु उसे यह अधिकार नहीं है कि वह सृष्टि विद्या अर्थात् विज्ञान को अनावश्यक बताकर वैज्ञानिकों को मूर्ख कहे। चाहे साधु, योगी, वैरागी कोई भी हो, जो भी टैक्नोलॉजी का कुछ भी उपयोग करता है, उसे विज्ञान को हेय बताने का कोई अधिकार नहीं है। फिर भी यदि कोई ऐसा करता है तो उसे वृक्षों की छाल और पत्तियों से अपने शरीर को ढककर जंगल में वास करते हुए ही अपना चरम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति का उपाय करना चाहिए।

इसी प्रकार मैं वेद विषय में कहना चाहूँगा कि वेद को भी अपने–2 बौद्धिक स्तर से पढ़ना–जानना होता रहता व रहा है। वेद के कुछ मंत्र सरल हो सकते हैं तो कोई अति दुरूह। कुछ सरल प्रतीत होने वाले मंत्रों की अति विस्तृत गम्भीर व्याख्या भी हो सकती है। मैंने अपने ऐतरेय के प्रारम्भिक व्याख्यान में इस बात को निकटता से अनुभव किया है। सामान्य वेद भक्त अपनी निरी श्रद्धावश वेद को अपौरुषेय व विज्ञानमय मानता है तो वेद का गम्भीर गवेषक वैदिक पदों की गहराइयों में जाकर वेद की अपौरुषेयता व सर्वज्ञानमयता का स्वयं अनुभव करता है। इस प्रकार का गवेषक ही वास्तव में सच्चा वेद–श्रद्धालु कहलायेगा। वेद मंत्रों के द्वारा आचार, व्यवहार, ईश्वर–प्रार्थना, स्तुति आदि के अर्थ करना सामान्य वैदिक विद्वान् की बौद्धिक सीमा में आता है, तो वैदिक पदों के गम्भीर अर्थ खोजकर उनसे गूढ़ विज्ञान को प्रकट करना महान् प्रज्ञावान् का ही सामर्थ्य है। ऐसा प्रज्ञावान् सामान्य वेदभक्त का विरोधी कैसे माना जाये? जो ऐसा मानता है, वह न तो वेद की उपादेयता को समझता है और न भगवत्पाद महर्षि ब्रह्मा जी से लेकर महर्षि दयानन्द जी तक चली आयी आर्ष परम्परा को समझता ही है। वह बेचारा नहीं जानता कि भौतिक वैज्ञानिकों की भाँति वैदिक वैज्ञानिक भी जन साधारण के लिए सुदृढ़ प्रहरी व पालक का काम करते हैं। ऐसे विद्वानों की छाया में रहकर सामान्य वेदभक्त 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' जैसे नारे निशंक होकर लगाते रह सकते हैं। इस नारे के लिए यदि कोई नास्तिक उन पर व्यंग वा आक्षेप करे तो उन्हें वैदिक वैज्ञानिक के पास ही आना होगा क्योंकि ऐसे नास्तिकों की औषधि उन्हीं के पास है। **दुर्भाग्य यह है कि आज अपने रक्षक व पालक विद्वानों व वैज्ञानिकों की ही आलोचना हो रही है।** हाँ, मैं इतना फिर भी कहूँगा कि उस प्रज्ञावान् वैदिक वैज्ञानिक के लिए भी वेद को पूर्णतः समझना सरल नहीं है। भला जिस परमात्मा ने अपना इतना ज्ञान वेद में दिया कि समस्त मानवजाति सम्पूर्ण सृष्टिकाल तक अपने ज्ञान विज्ञान को खोजती, जानती व उपयोग में लाती रहे, वह सम्पूर्ण सत्य ज्ञान का मूल स्रोत इतना सरल कैसे हो जायेगा कि एक काल में ही कुछ एक विद्वान् गवेषक उसे पूर्णतः जान लें। इस कारण मैं दोनों ही पक्षों से विनम्र निवेदन कर रहा हूँ–

(क) निवेदन आधुनिक वैज्ञानिकों की सेवा में

आधुनिक वैज्ञानिक जगत् में सृष्टि विज्ञान पर कई शताब्दियों से व्यापक अनुसंधान हो रहे हैं। अनेक परिकल्पनाएं वा सिद्धान्त जन्मे व असिद्ध होते हुए सुने हैं। वर्तमान में वैज्ञानिक जगत् का एक बहुत बड़ा वर्ग सृष्टि को शून्य में से एक महाविस्फोट में से प्रारम्भ होना मानता है। यद्यपि सितम्बर 2011 में मेरे साथ चर्चा में भारत के प्रख्यात पार्टिकल फिजिसिस्ट प्रो. एन.के. मण्डल साहब कह रहे थे कि बिग बैंग का तात्पर्य यह नहीं कि कुछ नहीं था फिर भी

विस्फोट हो गया और सृष्टि बन गयी परन्तु मैंने इतना अवश्य पढ़ा है कि जिसमें विस्फोट हुआ उसका आयतन शून्य व ऊर्जा, घनत्व आदि असीम थे। वर्तमान में जिनेवा स्थित विश्व की सबसे बड़ी प्रयोगशाला CERN में जो 70 देशों के 8000 इंजीनियर व वैज्ञानिक महाप्रयोग कर रहे हैं, न केवल बिग बैंग सिद्धान्त की पुष्टि करने अपितु सृष्टि के सभी रहस्यों को उद्घाटित करने का वैज्ञानिकों का दावा हम मीडिया के माध्यम से सुनते, पढ़ते रहे हैं। यही मान्यता आज विश्व के महान् वैज्ञानिकों में प्रबलता से छायी है। दूसरी ओर Cosmic Fractals देखे जाने से बिग बैंग के सिद्धान्त को चुनौती देने वाला भी एक समूह उभर रहा है। भारत में इस समूह के एक विश्व प्रसिद्ध महान् वैज्ञानिक हैं प्रो. ए.के. मित्रा साहब जिनसे अपने निकट सम्बंधों की चर्चा मैं पूर्व पृष्ठों में कर चुका हूँ। वे सृष्टि को अनादि व अनन्त मानते हैं। विख्यात खगोलशास्त्री पद्मविभूषण प्रो. जयन्त विष्णु नार्लीकर साहब का अपना एक अलग सिद्धान्त है। इसी बीच इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. हॉयल की स्टीडी स्टेट थ्यौरी व अन्य कई वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत स्ट्रिंग थ्योरी आदि अतीत का विषय बन गयीं।

यद्यपि मैंने भौतिक विज्ञान का विधिवत् विशेष अध्ययन नहीं किया है पुनरपि मेरा इस विषय में चिन्तन सदैव से रहा है तथा मान्य प्रो. मित्रा साहब B.A.R.C. जैसे विश्वस्तरीय वैज्ञानिक से लगभग 7–8 वर्षों से सम्पर्क रहा है। मान्य प्रो. ए.आर. राव साहब T.I.F.R. मान्य प्रो. एन.के. मण्डल साहब T.I.F.R. मान्य डा. जे.सी. व्यास जी B.A.R.C. आदि अनेकों वैज्ञानिकों से संगति की है तथा वैज्ञानिक साहित्य का भी कुछ विहंगावलोकन करता रहा हूँ व करता हूँ। इस सबसे वर्तमान सृष्टि विज्ञान के विषय में इतना अनुभव करता हूँ कि यद्यपि विश्व के हजारों वैज्ञानिक सदियों से सृष्टि के रहस्यों से पर्दा उठाने का अथक प्रयास कर रहे हैं परन्तु विद्या के बिना किसी निश्चित स्रोत (शब्द प्रमाण) तथा आगामी पृष्ठों में बताए कुछ कारणों से उनके लिए भी यह जगत् अभी भी एक पहेली ही बना हुआ है। इलेक्ट्रोन, फोटोन, विद्युत्, बल, फील्ड्स आदि सभी कुछ अभी पूर्ण व सुस्पष्ट व्याख्यात नहीं है। गुरुत्व बल अभी भी पहेली है। डार्क मैटर, डार्क इनर्जी अभी डार्क अर्थात् अज्ञात ही हैं। मैं यह भी मानता हूँ कि वर्तमान वैज्ञानिक भी जिस ढंग से इस ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानना सरल मान रहे हैं, वह इतना सरल है, नहीं। यह ब्रह्माण्ड रहस्यमय है और इसके सम्पूर्ण रहस्यों का उद्घाटन इस मानव के द्वारा कदापि सम्भव नहीं है। हाँ, उन्हें अधिकाधिक पुरुषार्थ करते अवश्य रहना चाहिए। अन्वेषण का कार्य सतत चलना चाहिए। स्ट्रिंग थ्यौरी को क्यों त्यागा गया? इसका कारण मेरी समझ में यह आता है कि वह अति कठिन व अस्पष्ट प्रतीत हो रही थी। **मेरा मानना है कि जो थ्यौरी इस ब्रह्माण्ड के बारे में अधिकाधिक रहस्यों को उद्घाटित करेगी, वह अवश्य ही अति कठिन एवं जटिल ही होगी। पूर्ण स्पष्टता कभी भी नहीं आ सकेगी। ऐसी परिस्थिति में उस पर और भी व्यापक व दीर्घकालीन पुरुषार्थ करना चाहिए। जब एक–2 वनस्पति कोशिका, प्राणी कोशिका आदि की ही रचना इतनी जटिल व रहस्यपूर्ण है तब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना इतनी सहज कैसे हो सकती है, जिसे पूर्णता से जानने का दावा किया जा सके।** मेरे विचार में वैज्ञानिकों को धैर्यपूर्वक अनवरत परिश्रम करते रहना चाहिए तथा **उन्हें हमारे वैदिक विज्ञान को केवल साम्प्रदायिक आचार–विचार तक सीमित न मानकर, यदि कोई विद्वान् उन पर गम्भीर व तार्किक अनुसंधान करता हुआ तथा आपके आधुनिक विज्ञान पर कुछ प्रश्न उठाता प्रतीत हो रहा हो, तो उसकी ओर भी आपको ध्यान देना चाहिए। इससे आपके अनुसंधान में बाधा नहीं आएगी बल्कि उसे एक नयी क्रान्तिकारी दिशा ही मिलेगी। आपका समय भी बचेगा।**

(ख) निवेदन वैदिक अनुसंधानकर्ताओं से

अपने वैज्ञानिक मित्र महानुभावों से कुछ निवेदन के पश्चात् मैं अपने उन वैदिक विद्वानों, सहयोगी महानुभावों व कार्यकर्ताओं को कुछ कहना चाहूँगा जो उतावले होकर मेरे कार्य के प्रति शीघ्र परिणाम की आशा कर रहे हैं। जिनकी दृष्टि में मुझ अकेले के द्वारा इस कार्य के लिए लगभग कुल 15 वर्ष का समय बहुत अधिक प्रतीत होता है। जो वेद के द्वारा सृष्टि के रहस्यों को खोलने तथा वेदविद्या को साक्षात् करने को अति सरल व सहज मानते हैं। **वे बन्धु कृपया यह विचारें कि जो वैज्ञानिक हजारों ही नहीं अपितु लाखों की संख्या में प्रचुर संसाधनों के साथ निश्चित व संगठित अनुसंधान परम्परा के तहत सदियों से लगे हैं, मैं उनको भी धैर्य रखने की सलाह दे रहा हूँ, तो जो आप दर्शन के किसी एक सूत्र वा वेद के किसी एक मंत्र वा सूक्त के रटते ही सृष्टि विद्या का रहस्य उद्घाटित करने का दावा करते हैं, को मैं क्या कहूँ?** आपको मैं जीव–वनस्पति कोशिका की क्या बात करूँ? आप इसमें कुछ समझते ही नहीं हैं। तब, मैं कहूँगा कि किसी वृक्ष की कोई एक पत्ती वा पुष्प को हाथ में लीजिये और उसे ध्यान से देखने का प्रयत्न करिये। यदि हरी न मिले तो सूखी ही सही। उसमें अनेक नसों के जाल पर विचार कीजिए फिर यह भी विचार कीजिये कि

एक पत्ती वा पुष्प के बारे में सब कुछ जानने हेतु क्या–2 पढ़ना होगा? केवल पुष्प–पत्ती जानने हेतु कृषि विज्ञान व वनस्पति विज्ञान को जानना तो अनिवार्य होगा ही इसके साथ उसके अन्दर हो रही रासायनिक क्रियाओं को जानने के लिए रसायन विज्ञान पढ़ना होगा। फिर इन सब को जानने हेतु भौतिक विज्ञान जानना होगा और भौतिक विज्ञान की अनेक शाखाएं परमाणु भौतिकी, नाभिकीय भौतिकी, कण भौतिकी, जैव भौतिकी आदि सबका गहरा ज्ञान जब तक नहीं होगा, तब तक परमेश्वर की एक तुच्छ सी प्रतीत होने वाली रचना पत्ती वा पुष्प का पूर्ण ज्ञान नहीं कर सकते। इसके बावजूद भी आप दावा नहीं कर सकते कि आपने पत्ती के बारे में सब कुछ जान लिया है। इसी प्रकार मानव शरीर के एक अंग का निष्णात चिकित्सक भी उस एक अंग के बारे में सर्वज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता। उसे शरीर क्रिया विज्ञान के साथ–2 उपर्युक्त रसायन विज्ञान व भौतिक विज्ञान की शाखाओं को भी गहराई से समझना होगा पुनरपि उसे कहना पड़ेगा कि मैं एक अंग यहॉ तक कि दांत के बारे में भी सब कुछ नहीं जानता। बड़े आश्चर्य की बात है कि हमारे विद्वान् **'सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् ....'** इस एक सांख्य सूत्र के रटने मात्र से ही महान् सृष्टिविज्ञानी होने का दावा करने लग जाते हैं। वे कहते हैं कि सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। प्रकृति से महत् तत्व, महत् से अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्र, इन्द्रियाँ, स्थूलभूतादि बन गये। यही सृष्टिविज्ञान है और इसमें क्या ऐसी कठिनाई है? मुझे भी ऐसे अहंकारी, उतावले विद्वान् मिले हैं। मैं उन ऐसे बन्धुओं को परामर्श देता हूँ कि वे ऐसी बातों से विज्ञान के सामान्य विद्यार्थियों में भी उपहास के ही पात्र बन जायेंगे। वैज्ञानिक इतना परिश्रम करते हैं, इधर ये विद्वान् एक सूत्र रटकर ही सृष्टिविज्ञान में प्रसिद्ध हो जाते हैं। जब मैं इनसे पूछता हूँ कि जैसे वर्तमान विज्ञान ने इलेक्ट्रोन, प्रोटोन आदि एक–2 कण के ऊपर बड़े–2 ग्रन्थ लिख दिये तो आप सत्वादि गुण व महत्, अहंकार, इन्द्रिय, तन्मात्र आदि में से किसी पर भी कुछ लिखकर व प्रयोग करके बताइये, तो ये विद्वान् मुझे अपना विरोधी मान लेते हैं तथा मेरे पीछे पड़ जाते हैं। मैं अब उनकी अज्ञानता पर परमात्मा की दया ही चाहता हूँ और क्या करूँ? मेरे भोले भाइयो! मैंने किसी से पूछा कि यह भवन कैसे बना? तो वह था बेचारा ऐसा ही कथित विद्वान्। बोला, भवन बनने में क्या है? नींव खोदी, पत्थर सीमेण्ट की चुनाई करते गये और लोहे की सरियों का जाल बुनकर कंकरीट सीमेण्ट की छत बना, प्लास्टर कर दिया। देखो, कितने सहज में ही भव्य भवन तैयार कर दिया, उस सर्वज्ञ महानुभाव ने? उस बेचारे ने नहीं समझा कि यदि ऐसे बातों से तथा अल्पज्ञान से भवन बन जाया करें तो इंजीनियर, आर्कीटैक्ट, कारीगर, मजदूर की आवश्यकता ही क्या है? वह नहीं सोचता कि पत्थर को पहाड़ से निकालने की तकनीक बनाने वाला, डायनामाइट को बनाने वाला जिससे विस्फोट करके पत्थर तोड़े गये, अन्य मशीन, ट्रैक्टर, ट्रक व इनको बनाने व चलाने वाले, सरिया बनाने व बनाने की क्रिया का आविष्कार करने वाले, भूमि से लोहा निकालने व शुद्ध करने वाले, सीमेण्ट का आविष्कार व बनाने, ढोने वाले, भवन का नक्शा बनाने व नक्शा बनाते समय भौतिक विज्ञान की अनेक विधाओं को ध्यान में रखने वाले विशेषज्ञ, विद्युत् के द्वारा पत्थरों की कटाई, घिसाई आदि करने व इसके लिए उन विद्युद्यन्त्रों को बनाने व विद्युत् के आविष्कर्त्ता, नदी से बजरी लाने, मजदूर, कारीगर, पानी लाने व भूमि से निकालने वाले व ट्यूबवैल चलाने व इसे आविष्कृत करने वाले अनेकों कारणों का सहयोग रहता है, तब एक भवन बनता है। उस पर कारीगर की कुशलता, सावधानी एवं ज्ञान सब कुछ भवन निर्माण में महत्वपूर्ण सहयोगी होता है। यदि बातों से ही भवन बन जाता तो हर कोई बड़े–2 भवन, किले बना लेता। जब एक भवन, फूल, पत्ती, शरीर के हाथ, पैर, दांत आदि अंग के ज्ञान में ही असंख्य कारणों का ज्ञान चाहिए तब क्या भाषण देने अथवा किसी सूत्र के अत्यन्त स्थूल वक्तव्य से ही ब्रह्माण्ड की रचना का पूर्ण ज्ञान हो जायेगा? मेरे भाइयो! बस करो, वैसे भी वैज्ञानिक जगत् तो आपको कहीं पूछता है नहीं। छोटे–2 बच्चे जो प्राथमिक, माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ते हैं, वे भी ऋषि मुनियों पर व्यंग कर रहे हैं, उस पर आप जैसे वेदज्ञ मिल जायें, तो वेदों का क्या होगा? इस कारण मेरी विनती है कि **आप तथ्य को समझने का कष्ट करें कि जगत् को पूर्णतः जानना सदैव असम्भव रहा है व रहेगा भी, इस कारण ऋषियों के सूत्रों के गूढ़ रहस्यों, वेद मंत्रों के महान् गम्भीर ज्ञान को जानने में अत्यन्त धैर्य रखो। अपने अन्दर की प्रज्ञा को अपनी सच्ची साधना व शुद्ध आहार, आचार के द्वारा जानने का प्रयास करो।**

मेरे बन्धुओ! यह जगत् रहस्य है और सदैव रहस्य ही रहेगा पुनरपि हमें यथाशक्ति जानने का प्रयास करना आवश्यक है। उसी प्रकार मैं कहना चाहूँगा कि जगत् को जानने का साधन ईश्वरीय ज्ञान वेद भी उतना ही रहस्यमय है जितना कि उसका जगत्। ''परमात्मा हमारी मां है। .... मां कभी अपने बच्चे को कठिन भाषा व विज्ञान नहीं सिखाती .... वह अपने बच्चे को प्रेम से सरल सीधा ज्ञान देती है .... इस कारण वेद अत्यन्त सुबोध है ....,'' ऐसी–2 भावुकतापूर्ण बातें करके आज के विद्वान् भोले आर्य जनों विशेषकर दानी महानुभावों को खूब छल रहे हैं। जब विद्वानों को ही वेद व जगत् की गम्भीरता का संकेत मात्र ज्ञान नहीं तो बेचारे भोले दानी श्रद्धालु क्या जानें? उनकी इसी अज्ञानता से विद्वानों की दुकानें खूब फल फूल रही हैं। मैं ऐसे विद्वद्बन्धुओं से पूछना चाहता हूँ कि **यदि वेद**

इतना सरल होता तो आपने इसे जान करके सृष्टि के सब रहस्यों को कब का ही साक्षात् कर लिया होता। फिर आधुनिक विज्ञान के समक्ष बौने क्यों हो गये? कोई–2 अपने को उससे श्रेष्ठतर मानते हैं, वे श्रेष्ठतर मानने का दम्भ करते हुए भी उसी की नकल करते हैं, यह तो श्रेष्ठता का लक्षण नहीं। श्रेष्ठ कभी अनुकरण नहीं करता बल्कि वह नेतृत्व करता है। मैं बलपूर्वक कहूँगा कि **यदि वेद इतना सरल था तो इसे समझाने हेतु पूर्वज महाप्राज्ञ महर्षि महामानवों ने क्यों मनुस्मृति, ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदांग, उपांग आदि की रचना की? क्यों फिर महर्षि भरद्वाज आदि महर्षि भगवन्तों ने अनेक वैज्ञानिक ग्रन्थों की रचना की? आप व हम बिना इसके वेद को सीधे समझ ही लेते।** ध्यान रखो, यदि वेद मूर्खों की कहानियाँ मात्र है अथवा सामान्य आचार–विचार का दिग्दर्शक शास्त्र ही है, तो सरल ही होगा परन्तु यदि वेद को सब ज्ञान विज्ञान का मूल मानेंगे तो वेद सरल नहीं अपितु अत्यन्त जटिल व कठिन ग्रन्थ ही सिद्ध होगा। अब यह निश्चित विद्वानों को ही करना है कि वे वेद को कहानी मानते हैं अथवा समस्त ब्रह्माण्ड को समझने का हेतु अत्यन्त महान् विज्ञान का व ब्रह्माण्ड भर में जीवों के आचार व्यवहार को दर्शाने वाले महान् ग्रन्थ?

पुनः मैं अपने बन्धुओं से यह भी पूछता हूँ कि जिस वेद में हर पद यौगिक है, जिसमें प्रकरण भेद के अनेकों अर्थ सम्भव हैं, वह वेद सरल कैसे हो गया?

प्रश्न– आप ऐसा करके वेद अध्येताओं व सामान्य पाठकों को भयभीत करके वेद से और दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वर्तमान में वेद से वैसे ही युवा–प्रबुद्ध दूर होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में उसे कठिन व जटिल बता करके वह पीढ़ी और भी दूर हो जायेगी, तब वेद का जो भी प्रचार हो रहा है, वह भी नहीं होगा।

उत्तर– जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही बताना उसके साथ व उसके उपयोगकर्ताओं के साथ न्याय है। आज जो वेद का प्रचार किया जा रहा है, उससे वेद की गरिमा क्या बढ़ रही है? क्या आपकी स्वयं की सन्तान वेद पर श्रद्धा रखती है? **क्या उनके मन में अपनी पाठ्य पुस्तकें पढ़ते समय ये प्रश्न नहीं उभरते कि हमारी शिक्षा पद्धति व पाठ्य पुस्तकों में कहीं भी वेद व ऋषियों के ज्ञान का उल्लेख नहीं है। क्या यह पीढ़ी पश्चिमी शिक्षा की दास नहीं बन गयी है? यदि हाँ, तो वेद का क्या हुआ? इस प्रचार से क्या उपलब्ध होगी व हुई है? क्या हमने वेद को सरल कहते–2 केवल भाषण, मनोरंजन व पूजादि कर्मकाण्डों तक ही सीमित नहीं कर दिया है?** मैं आपसे पूछता हूँ कि यदि मैं किसी को कहूँ कि भौतिक विज्ञान, गणित आदि पढ़ना बहुत सरल है और हर बच्चा इसे सरलता से पढ़ सकता है। तब क्या मेरे कहने मात्र से हर व्यक्ति वैज्ञानिक वा गणितज्ञ बन जायेगा? हाँ, मैं यह कहूँगा कि इन्हें पढ़ना बहुत कठिन साथ ही अति महत्वपूर्ण है परन्तु अपनी रुचि व प्रतिभा को देखते हुए इन्हें पढ़ने का पूर्ण पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार मैं कहूँगा कि **यद्यपि वेद व जगत् दोनों अत्यन्त रहस्यमय, जटिल है परन्तु हमें अपनी प्रतिभा व रुचि को देखकर इनका यथाशक्ति अध्ययन करने का पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए। वेद व जगत् दोनों महासागर हैं। हमारे मस्तिष्क एक बाल्टी के समान हैं। इससे उस महासागर से जितना पानी व रत्न खींच सकते हैं, खींचने का यत्न करते रहना चाहिये और कभी भी स्वयं को सर्वज्ञ मानने का दावा नहीं करना चाहिए। मैं मानता हूँ कि जो विद्वान् वा वैज्ञानिक यह दावा करता है कि उसने जगत् को सम्पूर्णरूपेण जान लिया, उसने कुछ नहीं जाना। यही वास्तविकता है।**

मेरी भाष्य शैली एवं अनुभव

(क) मेरी शैली

मैंने अनुभव किया कि उपर्युक्त ऐतरेय ब्राह्मण भाष्यों से ग्रन्थ को समझना तो सम्भव नहीं है, पुनरपि आचार्य सायण के भाष्य से मुझे काम करने के लिए क्षेत्र अवश्य मिला। अनेक वैदिक उद्धरण मिले, कहीं–2 वैदिक पदों की व्युत्पत्ति एवं याज्ञिक प्रक्रिया को समझने का अवसर भी मिला। फिर सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि आचार्य सायण ने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को जीवित रखा, जिसके लिए हमें उनका ऋणी होना चाहिए, भले ही उनके इस भाष्य के आधार पर पशुबलि आदि बीभत्स पाप यज्ञों में होते रहे हैं। मैं भाष्य करने के लिए सायण भाष्य की प्रायः पूर्ण उपेक्षा करके विभिन्न पदों के उन अर्थों को देखता जो कहीं भी महर्षि दयानन्द जी ने अपने वेद भाष्य में किये हैं। वस्तुतः भगवत्पाद दयानन्द सरस्वती जी ही न केवल मेरे इस ऐतरेय ब्राह्मण व्याख्यान के प्रमुख मार्गदर्शी हैं अपितु वे मेरे जीवन के हर क्षेत्र के भी एक मार्गदर्शी हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों और निरुक्त के अनेक निर्वचनों पर भी विचार करता, आवश्यक होने पर विभिन्न कोशकारों के अर्थों पर भी विचार करता। इस प्रकार एक पद के कई अर्थों को अपनी संचिका में लिख लेता। यदि किसी शब्द का कहीं कोई भी अर्थ, निर्वचन, व्युत्पत्ति नहीं मिलती और उस पद के स्वरूप का बोध किसी भी ग्रन्थ से नहीं होता, तो मैं स्वयं अपने ढंग से उस शब्द की व्युत्पत्ति, निर्वचन एवं स्वरूप को दर्शाता और 'इति मे मतः' ऐसा भी लिख देता। उसके पश्चात् कण्डिका का भाष्य करते समय विभिन्न पदों के सभी अर्थों पर चिन्तन करते हुए किसी एक अर्थ का ग्रहण करके भाष्य लिखता। कई बार ऐसा भी हुआ कि उपर्युक्त प्रकार से संगृहीत सभी अर्थों को उपेक्षित करके अपने मस्तिष्क में अकस्मात् आये किसी सर्वथा नवीन अर्थ का प्रयोग करता। इस सबको करते हुए अर्थों को यथासम्भव आधुनिक विज्ञान की शैली में संगत करने का भी प्रयास करता, जहाँ आधुनिक विज्ञान से संगति नहीं प्रतीत होती, वहाँ अपनी विशेष ऊहा से महर्षि दयानन्द जी आदि ऋषियों की सूक्ष्म एवं प्रायः अदृष्ट संकेतों को आधार बनाकर प्राचीन संभावित वैज्ञानिक शैली में लिखने का प्रयत्न करता। कई बार ऐसे भी अवसर आये जब किसी पद का अर्थ करने में उपर्युक्त सभी प्रकारों से असफलता हाथ लगी। एक–2 पद के अर्थ पर चिन्तन करते–2 दो–चार दिन अथवा सप्ताह तक भी बीत गया परन्तु कुछ भी हाथ न लगा। उस समय मैंने महर्षि जी की वेद भाष्य शैली को स्मरण किया कि वे कई बार किसी गूढ़ वैदिक पद का अर्थ समाधि के द्वारा जाना करते थे और यही उनका अन्तिम उपाय भी होता था। मैं जीवन भर लगभग अस्वस्थ रहते हुए आसन भी सिद्ध न कर सका एवं किसी योगी गुरु के अभाव में योगी तो क्या योग साधक भी अच्छी तरह न बन सका परन्तु ईश्वर प्रणिधान, सत्य के प्रति जन्म से अटूट निष्ठा एवं इस लक्ष्य के प्रति पूर्ण निष्काम समर्पण के बल पर मैंने भी ऐसे जटिल पदों के अर्थों को करने में पूर्ण एकान्त बैठकर ईश्वर स्तुति प्रार्थना, उपासना के द्वारा उस पद के स्वरूप और ईश्वर की बनायी हुई सृष्टि के स्वरूप पर गम्भीरता से बन्द कक्ष में कुछ घण्टों तक एकाग्र मनन चिन्तन किया, प्रभु की महती कृपा से जब–2 मैंने ऐसी प्रक्रिया को अपनाया, तब–2 ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो मेरे प्रभु ही उस पद के अर्थ सुझा रहे हैं और सृष्टि में होने वाली ऐसी कई प्रक्रियाओं जैसे तारों व गैलेक्सियों का निर्माण तारों के केन्द्रीय भाग में होने वाली प्रक्रियाएं आदि को मानो मैं अतीन्द्रिय होकर देख रहा हूँ और उसकी उस पद से पूर्ण संगति भी दिखायी दे रही है। उसके बाद एक अव्यक्त आनन्द की अनुभूति मैंने कई बार की है। अपने इस कार्य से मेरा परमात्मा के प्रति निष्ठा और विश्वास एवं उनकी करुणा का अनुभव पूर्व जीवन की अपेक्षा बहुत बढ़ता जा रहा है। मैंने जब–2 यह प्रतिज्ञा की कि 'अपने कक्ष के द्वार तभी खोलूँगा जब मैं उस पद का रहस्य समझ लूँगा', तब–2 परमपिता परमात्मा ने सदैव मेरी लाज रखी। केवल एक दिन इसका अपवाद है, जब मैं बिना उचित समय ही ध्यान में बैठ गया। मैंने इस ऐतरेय ब्राह्मण के सायण भाष्य के कुल 1335 पृष्ठों में से लगभग 12–13 पृष्ठ ही प्रक्षिप्त अनुभव किये हैं, जिनका हेतु मैं बाद में बताऊँगा। उनकी प्रक्षिप्तता की अन्तिम परख भी अपने अन्तिम भाष्य में ही कर पाऊँगा। आज मैं अपने अनुभव के आधार पर वेदादि शास्त्रों पर अनुसंधान करने वाले प्रौढ़ विद्वानों से निवेदन करूँगा कि वे अपने इस कार्य में साधना का प्रयोग अवश्य करें। **प्रच्छन्न नास्तिक, धन एवं प्रतिष्ठा के लोभी, कर्कश स्वभाव, ईर्ष्या–असूया, अहंकार से ग्रस्त कभी गम्भीर अनुसंधान नहीं कर सकते। जो विद्वान् योग साधना करते व करने की प्रेरणा करते हैं, उनसे निवेदन करूँगा कि वे अपनी साधना का प्रयोग वेदादिशास्त्रों को समझने में लगा कर देखें। यदि उनकी समझ में शास्त्र न आये तो अपनी साधना को परिष्कृत करने का प्रयास करें। अहंकार, ईर्ष्यादि दोषों व बनावटी चरित्र आदि से सर्वथा दूर रहकर अपने प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण व पूर्ण निष्काम भाव वाला व्यक्ति ही सच्ची साधना कर सकता है। प्रतिष्ठा एवं अर्थादि का दास कभी**

साधक नहीं हो सकता। यह आत्मनिरीक्षण हम सबको करना चाहिए। कौन कितने घंटे साधना करता है? यह महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि कौन कितना ईश्वर समर्पित, निष्काम व सरल हृदय है, यही साधना–साधक का लक्षण है।

(ख) मेरा अब तक का अनुभव

जैसा कि मैं अब तक सभी से निवेदन करता रहा कि मेरा यह ऐतरेय व्याख्यान प्रारम्भिक रफ जैसा है, जिसके आधार पर मुझे किसी भी प्रकार के महत्वपूर्ण दावे या घोषणाएं करने से बचना चाहिए। परन्तु जब बार–2 मुझसे यह शिकायत की जाती हो कि मैंने अब तक क्या पाया, कुछ अभी तक क्यों नहीं बताया? कहीं मेरे सहयोगी महानुभाव इस भ्रान्ति के शिकार न हो जायें कि उनका आर्थिक सहयोग व्यर्थ जा रहा है। मैं अपने रफ प्रारम्भिक व्याख्यान के आधार पर कुछ सम्भावित परिणामों के संकेत देने को विवश हो रहा हूँ। आज जब विद्वान् ही वैज्ञानिक शोध प्रक्रिया को नहीं समझते कि **बिना अन्तिम परिणाम प्राप्त किये किसी भी वैज्ञानिक को अपने शोध के विषय में कोई भी घोषणा वा जानकारी प्रकाशित नहीं करनी चाहिए।** इस साधारण परन्तु आवश्यक बात को भी वे नहीं समझते तो मेरे कार्यकर्ता और सहयोगी महानुभाव कैसे समझ पायेंगे? इसी कारण कभी–2 उनमें से किन्हीं की ओर से यह आग्रह किया जाता रहा कि मैं अपना रफ प्रारम्भिक व्याख्यान पूर्ण होने के पश्चात् कुछ न कुछ तथ्य अवश्य प्रकाशित करूँ, जिससे उनको कुछ सन्तोष हो सके एवं मेरा विरोध करने वालों को शान्त किया जा सके। मैं इन सब कारणों से कुछ सम्भावनायें लिखने को विवश हो रहा हूँ। जिन्हें अगले दो अध्यायों में दिया जा रहा है।

वैदिक जगत् से जुड़े महानुभावों के लिए मेरा सन्देश

जब मैं अपने वैज्ञानिक भाष्य में से विशुद्ध आधुनिक विज्ञान के कुछ अतीव जटिल प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता हूँ तो वे वैदिक महानुभाव कहते हैं कि यह विज्ञान हमारा विषय नहीं है, हम धरती पर रहना जानते हैं, आकाश में उड़ना नहीं, तो कोई यह भी कहते हैं कि आधुनिक विज्ञान की हमें कोई आवश्यकता नहीं। हमारे अनेक विद्वान् कुरान, बाईबिल, पुराण आदि ग्रन्थों की बहुत समीक्षाएं करते हैं। उनका अध्ययन करते हैं। उनका एक मात्र उद्देश्य विरोधियों के विचारों का खण्डन करना ही होता है, यह अच्छी बात है। हमें सारे संसार के साहित्य को पढ़ने का प्रयास करना चाहिए, सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन अवश्य करना चाहिए और ऐसा आर्य समाज के इतिहास में हुआ भी बहुत है। स्वयं कभी संध्या न की, भक्तिरस में कभी जिन्हें आनन्द नहीं आता, उन्हें भी पौराणिक भक्तहृदयों पर व्यंग करते मैंने बहुत देखा है। परन्तु जो विज्ञान सारे सम्प्रदायों को निगलता जा रहा है, जो सार्वभौम और शाश्वत सत्य का प्रतीक बनकर मानव मात्र के जीवन में समाया हुआ है। परमपिता परमात्मा की सृष्टि को जिसके बिना किञ्चिदपि समझा व जाना नहीं जा सकता, उस वैज्ञानिक विचारधारा के प्रति ऐसी गहरी उपेक्षा किसी भी ऋषिभक्त वा वेदभक्त के लिए उचित नहीं है। विज्ञान की बात छोड़ें, आर्य समाज में अपने स्वतः प्रमाण वेद को समझने की प्रवृत्ति भी कहाँ रह गई है? **हम कुरान आदि का तो अध्ययन करें परन्तु वेद का नहीं, 'पर छिद्रान्वेषण' के विशेषज्ञ तो बनें परन्तु अपने छिद्र वा अपने रत्नों को कभी समझ न पायें, यह सच्चा आर्यत्व नहीं है मेरे बन्धु। आज वेद प्रचार के नाम पर जो हो रहा है क्या उसे 'सर्वज्ञानमयो हि सः', 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक', का प्रतिबिम्ब समझा जा सकता है? हमने अपने इस प्रचलित वेदोपदेश, कर्मकाण्ड, वेदपाठ आदि के द्वारा विश्व तो क्या भारत के भी प्रबुद्ध वर्ग विशेषकर वैज्ञानिक वर्ग तक को कहाँ तक प्रभावित किया है? सोचो, मेरे बन्धु! अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचो! कहीं हम मुक्त आत्मा भगवान् दयानन्द के साथ छल तो नहीं कर रहे हैं? कहीं हम विश्व के क्षितिज पर जगमगाते वर्तमान विज्ञान के उपहास के पात्र तो नहीं बन रहे हैं?** यदि ऐसा नहीं होता तो आर्य विद्वानों वा आर्य नेताओं की सन्तान आर्ष शिक्षा की उपेक्षा करके पाश्चात्य शिक्षा को गले नहीं लगा रही होती। कुछ ऋषिभक्त आर्ष शिक्षा को अर्थकारी बनाने हेतु उसकी शासकीय मान्यता दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह विचार बहुत समीचीन है परन्तु इससे आर्ष पद्धति के अध्येताओं को सरकारी सेवा में जाने के विकल्प तो प्राप्त हो सकते हैं परन्तु इससे आर्ष ज्ञान विज्ञान का प्रकाशन कथमपि सम्भव नहीं, तब यह शिक्षा भी सरकारी बाबू बनाने तक ही सीमित होगी। यदि आर्ष पाठविधि की शासकीय मान्यता से ही वेद की प्रतिष्ठा हो सकती तो आज भी कितने आर्य विद्वान् विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर हैं वा रहे हैं। उन्होंने महर्षि के ग्रन्थों का अध्ययन भी किया है। तब उन्होंने वैदिक ज्ञान विज्ञान की प्रतिष्ठा कर ही दी होती। आज वास्तविक यह है कि आर्ष पाठविधि को शासकीय मान्यता मिलने से गुरूकुल के स्नातकों को शासकीय सेवा मिलने के अवसर मिल सकेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य विशेष लाभ होने वाला नहीं है। अब आर्यों को विचारना है कि क्या इससे ही महर्षि दयानन्द जी महाराज का वेदोद्धार का महान् उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा? मुझे बहुत आश्चर्य है कि हम अभी तक महर्षि के उद्देश्य को नहीं समझ पाये हैं। फिर भी जो भी आर्य वा पौराणिक विद्वान् वेद वा आर्ष ग्रन्थों पर श्रद्धा रखते हैं तथा यह जानना चाहते हैं कि मैं ऐतरेय ब्राह्मण का भाष्य क्यों कर रहा हूँ? इससे क्या लाभ होगा? इसी कारण मेरा आग्रह आर्ष वा वैदिक ज्ञान के यथार्थ को समझने का है, जो आज नहीं दीखता है। **मैं ऐसे बन्धुओं से इसलिए यह निवेदन करना चाहूँगा कि उनके लिए भी मेरे ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम व्याख्यान से बहुत सी ऐसी जानकारियां उपलब्ध होंगी, जिनमें से कई बिन्दुओं पर आपका ध्यान भी नहीं है।** उनमें से कुछ निम्न लिखित हैं—

1. मेरे व्याख्यान से वेद ऋचाओं के अग्नि आदि ऋषियों के समाधिस्थ चित्त में प्रकट होने की स्पष्ट वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा उन ऋचाओं के प्रकट होने से पूर्व उन ऋचाओं की विद्यमानता की अनिवार्यता व स्वरूप का बोध हो सकेगा।
2. वेद की ऋचाओं का उपयोग मानव जाति को भोग व अपवर्ग का उपदेश देने के साथ सृष्टि उत्पत्ति एवं संचालन में उन ऋचाओं के योगदान का ज्ञान हो सकेगा।
3. वेद ऋचाओं का वास्तविक वैज्ञानिक स्वरूप विदित हो सकेगा।
4. वेद संहिताओं में मंत्रों के ऊपर निर्दिष्ट देवता सूचक पदों का उपयोग न केवल उस मंत्र का अर्थ समझने के लिए ही होता है, अपितु देवता पदों के रहस्य को समझकर सृष्टि विज्ञान को समझना भी सम्भव होता है, ऐसा देवता पद का यथार्थ स्वरूप विदित हो सकेगा।

5. वेद मंत्रों के ऊपर निर्दिष्ट ऋषिवाची नामों को महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने ऐतिहासिक माना है, जिन्होंने उस–2 मंत्र का साक्षात्कार करके व्यापक प्रचार किया था, इस कारण उनके उपकार के स्मरण के लिए इन नामों का होना महर्षि जी ने स्वीकार किया है। ऐसा सत्य भी है, परन्तु आप मेरे व्याख्यान से इस ऋषि पदार्थ का ऐसा स्वरूप भी समझ पायेंगे, जिससे सृष्टि को समझने और इस ऋचा की उत्पत्ति का विज्ञान समझने में सहयोग मिलेगा। ''ऋषयो मन्त्र द्रष्टारो बभूवुः'', भगवान् यास्क महाराज के इस वाक्य का वैज्ञानिक यथार्थ जानने को मिलेगा।
6. बहुत से मंत्रों में ऋषिवाची पद विद्यमान हैं और कभी–2 वे ही ऋषिवाची पद मंत्र के ऊपर निर्दिष्ट ऋषि के रूप में भी विद्यमान हैं, तब ऊपर निर्दिष्ट ऋषि को ऐतिहासिक व्यक्ति मानें तो वेद मंत्र में आने वाले ऋषि पद को देखकर क्या वेद मंत्र में मानव इतिहास माना जाये? यदि हाँ, तो यह आर्ष परम्परा के प्रतिकूल होगा और यदि नहीं तो दोनों ऋषिवाची पदों की विद्यमानता की उलझन को कैसे सुलझाया जा सकेगा? इसका ज्ञान भी मेरे ग्रन्थ से हो जायेगा।
7. वैदिक छन्दों के विज्ञान की क्या सृष्टि प्रक्रिया में भी कोई भूमिका होती है? इस बात का विशद विवेचन मेरे ग्रन्थ में होगा। गायत्री आदि छन्दों के विभिन्न प्रकारों का पूर्ण वैज्ञानिक विवेचन भी सृष्टि विज्ञान के सन्दर्भ में हो सकेगा।
8. वैदिक पद, अक्षर, उदात्त आदि स्वर एवं षड्ज आदि स्वरों का विज्ञान कैसे सृष्टि प्रक्रिया को समझने में काम आता है? यह भी आप समझ पायेंगे। जिससे यह विदित होगा कि परम्परागत सस्वर वेदपाठ की इस मानव जाति या समस्त सृष्टि को क्या आवश्यकता है?
9. महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में अनेक आर्ष प्रमाणों के द्वारा शब्द को नित्य सिद्ध किया है, इस शाब्दिक नित्यता का गम्भीर वैज्ञानिक रहस्य भी इस ग्रन्थ में उद्घाटित होगा।
10. आचार्य पिंगल ने छन्दशास्त्र में गायत्री आदि छन्दों के विभिन्न रंगों, देवताओं और गोत्रों का वर्णन किया है। इन सबका वैज्ञानिक रहस्य भी मेरे व्याख्यान से समझ में आ सकेगा।
11. वैदिक भाषा विश्व की सब भाषाओं की जननी है, यह तो सभी स्वीकार करते ही हैं, परन्तु इसकी सृष्टि सम्बन्धी गम्भीर वैज्ञानिकता का बोध भी मेरे व्याख्यान से होगा।
12. ऐतरेय ब्राह्मण में कई मंत्र ऐसे हैं जो वेद संहिताओं और उपलब्ध शाखाओं में भी नहीं हैं, इनकी ओर पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' नामक ग्रन्थ में संकेत किया है, परन्तु उन्होंने इस विषय में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। ऐसी स्थिति में वे मंत्र कहाँ से आये, क्या वर्तमान वेद संहिताएं अपूर्ण हैं अथवा कोई अन्य गम्भीर विज्ञान इन अतिरिक्त मंत्रों में छिपा है? इसका निर्णय मेरे व्याख्यान में होगा।
13. वेद मंत्रों की रचना में ऐसा क्या है कि जिनको ऋषिनिर्मित न मानकर ईश्वरीय माना जाये? इस प्रश्न का उत्तर भी मिल सकेगा।
14. सृष्टि रचना में ईश्वरीय सत्ता की अनिवार्यता का भी प्रतिपादन होगा।
15. विभिन्न वैदिक पदों यथा प्राण, वायु, अग्नि, उदक, पृथिवी, आकाश, अहंकार, इंद्रियाँ, मन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, सोम, सूर्य, गायत्री आदि छन्द, ऋषि, देव, असुर, मनुष्य, नाग, पितर, राक्षस, गन्धर्व, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र एवं वृत्र आदि का वैज्ञानिक रहस्य क्या है? ये किन पदार्थों के नाम हैं, इनकी वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में क्या स्थिति है? क्या इन्हें प्रयोगशाला में सिद्ध करना वा अनुभव करना सम्भव है? यह सब स्पष्ट हो सकेगा।
16. वैदिक विज्ञान क्या केवल व्याख्यान, प्रवचन के लिए है अथवा इसको प्रयोगात्मक रूप देकर विश्व के विकसित विज्ञान को नयी दिशा दी जा सकती है? यह भी ज्ञान होगा।
17. क्या वैदिक विज्ञान केवल आध्यात्मिक विज्ञान (Spiritual Science) का ही नाम है अथवा इसमें उत्तम पदार्थ विज्ञान (Physical Science) भी विद्यमान है, यह भी स्पष्ट होगा।
18. वैदिक विज्ञान के सहारे अति उच्च एवं पूर्ण निरापद टैक्नोलॉजी के विकास की प्रेरणा भी मिल सकेगी और इस पर वर्तमान में लगा हुआ व्यर्थ वाग्विलास और मिथ्या आत्मतोष रूपी कलंक मिट सकेगा।
19. योग दर्शन में दर्शायी विभूतियों का एक विशेष वैज्ञानिक आधार भी हो सकता है, यह बात उनको ज्ञात हो सकेगी, जो स्वयं को सर्वसिद्ध योगी मानकर विभूति पाद की अनेक विभूतियों पर प्रश्न खड़े कर रहे हैं। मेरे

इस व्याख्यान से योग साधकों को योगसाधना में भी इस कारण सहायता मिल सकेगी क्योंकि इससे ईश्वर के कार्यों को अति सूक्ष्मता से समझने की क्षमता उत्पन्न होगी।

20. वैदिक दर्शनों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में दर्शाये विभिन्न पदार्थों के स्वरूपों में परस्पर सामञ्जस्य और वर्तमान विज्ञान की भाषा से संगति का भी ज्ञान हो सकेगा।
21. ब्राह्मण ग्रन्थों को समझे बिना वेद को समझना नितान्त असम्भव है, इसकी स्पष्ट अनुभूति प्रौढ़ शोधकर्ताओं को हो सकेगी।
22. निरुक्तकार यास्क महर्षि के विज्ञान की वर्तमान वैज्ञानिक युग में महत्ता का प्रतिपादन भी हो सकेगा।
23. वेद में पुनरुक्ति एवं व्यत्यय पर कथित वेद अनुसंधानकर्ताओं द्वारा उठाई जा रही शंकाओं का स्पष्ट वैज्ञानिक विवेचन मिलेगा।
24. भगवत्पाद महर्षि वेदव्यास के ''तत्तु समन्वयात्'' सूत्र अर्थात् वेद और सृष्टि में पूर्ण सामञ्जस्य है, इसका स्पष्ट दर्शन होगा।
25. परमात्मा अपना ज्ञान सामान्य बोलचाल की भाषा में न देकर गायत्री आदि छन्दों में क्यों देता है? इस प्रश्न का उत्तर भी मिलेगा।
26. ब्राह्मणग्रन्थकार ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में ऐसी गूढ़ भाषा जिसके अन्य अश्लील, हिंसापरक एवं मूर्खतापूर्ण अर्थ भी निकल सकते हैं, का प्रयोग क्यों किया? इसका भी उत्तर मिल सकेगा।
27. वेद में यौगिक पदों का उपयोग क्यों हुआ? यदि ऐसा नहीं होता और सीधे सरल अर्थ होते तो जनसाधारण भ्रमित नहीं होता। तब यौगिक पदों की क्या उपयोगिता है? यह बात समझ में आ सकेगी।
28. सृष्टि विज्ञान की मोक्ष मार्ग में उपयोगिता भी स्पष्ट होगी।
29. वैदिक काल में अस्त्र–शस्त्र, विमान विद्या, चिकित्सा आदि की टैक्नोलॉजी का संकेत भी मिल सकेगा। इन संकेतों को उच्च स्तरीय वैज्ञानिक एवं टैक्नोलोजिस्ट समझ सकेंगे।
30. रामायण, महाभारत आदि में वर्णित देव, गन्धर्व, राक्षस, असुर, किन्नर, सिद्ध, ऋषि, पक्षि, वानर, गृध आदि के इतिहास में कल्पना और सम्भावना के बीच की रेखा को जॉचने व परखने के लिए प्राचीन इतिहास के अनुसंधाताओं को एक नयी वैज्ञानिक दृष्टि मिल सकेगी। आज इस दृष्टि के अभाव में आर्ष ग्रन्थों में मनमाने ढंग से प्रक्षेप भी बताये जा रहे हैं। जो बात अपनी बुद्धि में नहीं आती, उसे हम सृष्टिक्रम अथवा वेद के विरुद्ध कहकर प्रक्षिप्त घोषित कर देते हैं, जबकि हम वेद अथवा सृष्टि दोनों के विज्ञान को नहीं जानते और अनाड़ीपन से खण्डन की कैंची हाथ में लिए फिरते हैं। मेरे ऐतरेय व्याख्यान (भाष्य) से विद्वान् लोग इस पाप से बच सकेंगे। किसी विचारधारा का खण्डन वा समीक्षा करना अथवा उसका अनुसंधान करते हुए प्रक्षेप ढूँढ़ना, किसी सुयोग्य सर्जन के द्वारा सर्जरी करने के समान गंभीर उत्तरदायित्व और उच्च योग्यता का काम है। जिस प्रकार अयोग्य सर्जन के द्वारा किसी रोगी के प्राण जा सकते हैं, उसी प्रकार अयोग्य समीक्षकों के द्वारा आर्ष विद्या प्राणविहीना हो सकती है। परन्तु खण्डन और सर्जरी दोनों कार्य यथासमय आवश्यक हैं, यद्यपि बिना योग्यता के कदापि नहीं।
31. आध्यात्मिक एवं पदार्थ विज्ञान के बीच के सम्बन्ध को जानने की एक नयी दृष्टि मिल सकेगी।
32. वेद विज्ञान अनुसंधान की इस मानव जाति एवं भारतीय गौरव के लिए सर्वोपरि महत्ता प्रतिपादित हो सकेगी। इसके कारण संसार के मानवतावादियों को यथार्थ मानवता तथा आर्यावर्त (भारत) के प्रति सच्ची भक्ति रखने वालों को यथार्थ राष्ट्रभक्ति का बोध हो सकेगा तथा वेद समस्त ब्रह्माण्ड का एक महान् ग्रन्थ सिद्ध हो सकेगा।
33. वर्तमान विज्ञान को हम निन्दा वा उपेक्षा का पात्र मानने की मूर्खता न करके उसकी विवेकपूर्ण निकटता को प्राप्त करके पूर्व व पश्चिम की एकता के महान् सूत्रधार बन सकेंगे।
34. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है तथा परमात्मा सृष्टि और सृष्टि विज्ञान दोनों का ही मूल कारण है, इसकी सिद्धि हो सकेगी।
35. हमारे प्राचीन सोमयाग आदि वैदिक यज्ञों के विशेषज्ञ जो आज तक यज्ञों के गम्भीर एवं व्यवहारिक विज्ञान से नितान्त अपरिचित हैं, उनको अपने यज्ञों में छुपे सृष्टि के गम्भीर रहस्यों को जानने की एक अद्भुत दृष्टि मिल सकेगी, जिससे वे आधुनिक वैज्ञानिक युग में उपेक्षा व उपहास के पात्र न बनकर श्रद्धा और सम्मान के पात्र बन सकेंगे। आज पौराणिक जगत् में विभिन्न यागों के अनेक विशेषज्ञ विद्यमान हैं, जो अपने यागों के नाम पर पशुओं की क्रूर हिंसा भी करते हैं तथा जिनके यागों की विभिन्न प्रक्रियाएं जटिल और उलझनपूर्ण प्रतीत होती हैं। इन प्रक्रियाओं के पीछे उनकी केवल अदृष्ट कल्पित फल दृष्टि होती हैं, ऐसे याज्ञिकों को इस ऐतरेय

व्याख्यान से उनकी यज्ञ प्रक्रियाओं के पीछे छुपी तार्किकता और वैज्ञानिकता का बोध हो सकेगा और पशुबलि आदि पापों से बच सकेंगे।

36. वे अपने याज्ञिक विज्ञान के आधार पर विश्व के विकसित वैज्ञानिकों को कई क्षेत्रों में मार्गदर्शन दे सकेंगे।
37. पाणिनीय व्याकरण के अध्येता और अध्यापक इस व्याकरण की गम्भीर वैज्ञानिकता को समझकर वेदादि शास्त्रों के अनुसंधान में इसका प्रयोग करने की एक वैज्ञानिक प्रणाली को सीख सकेंगे।
38. वेद एवं आर्ष ग्रन्थों के महान् ज्ञान–विज्ञान को समझने की एक वैज्ञानिक आर्ष प्रणाली का सम्भवतः ऐसा आविष्कार हो सकेगा, जिससे उच्च वैज्ञानिक व तकनीकी प्रतिभा से युक्त महानुभाव महर्षि अगस्त्य और भरद्वाज वा महादेव, ब्रह्मा आदि महान् पुरुषों की प्रयोगशालाओं के बारे में कुछ संकेत प्राप्त कर सकेंगे।
39. वेद आदि शास्त्रों को सम्प्रदाय, वर्ग, देश, भाषा आदि की सीमाओं से बाहर निकालकर सार्वभौम और शाश्वत आध्यात्मिक एवं पदार्थ विज्ञान (Physical Science) की महान् धरोहर सिद्ध कर सकेंगे।
40. हमारे पौराणिक भाई बिना सोचे समझे सब कुछ मानने की अन्धश्रद्धा का परित्याग करके विवकेशील होने का तथा मेरे आर्य बन्धु बिना सोचे समझे सब कुछ खण्डित करने की निर्मम प्रवृत्ति का परित्याग करके वास्तविक विवेक की ओर बढ़ सकेंगे। जिससे दोनों के बीच की दूरी कम होने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा। साथ ही ईसाई, मुसलमान आदि सम्प्रदाय एवं वर्तमान वैज्ञानिक वा नास्तिक हमारे वैदिक ज्ञान विज्ञान की ओर स्वयमेव आकर्षित हो सकेंगे।
41. वर्तमान युग के महान् वेद द्रष्टा महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के विद्या, विज्ञान बल का अनुभव न केवल उन अहंकारी आर्य विद्वानों को हो सकेगा, जो पदे–2 महर्षि जी की समीक्षा करने को आतुर रहते हैं बल्कि पौराणिक भाइयों एवं अन्य सम्प्रदाय के लोगों साथ ही प्रबुद्ध नास्तिकों के हृदय में महर्षि जी के प्रति सुखद श्रद्धा का अभ्युदय होगा।
42. वर्तमान में उपेक्षित संस्कृत भाषा की उपयोगिता सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त बढ़ सकेगी, जिसकी कल्पना वर्तमान संस्कृतज्ञ भी नहीं कर पा रहे हैं।
43. मेरे ऐतरेय व्याख्यान से न केवल वर्तमान वैज्ञानिकों को अपनी शोध परम्परा को कुछ संशोधित व परिवर्तित करने के लिए विवश होना पड़ेगा अपितु वैदिक परम्परा के अध्येताओं को भी वर्तमान अध्यापन–अध्ययन शैली को परिवर्तित और संशोधित करने के लिए विवश होना पड़ेगा।

मेरे पाठक गण! महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्य के परीक्षण के लिए जो साधन बतलाये हैं, उन अनेक साधनों में से दो प्रमुख साधन सृष्टिक्रम की अनुकूलता एवं वेद की प्रतिपादिकता भी है। हम प्रायः देखते हैं एक अति सामान्य सा आर्य समाजी भी किसी भी बात को वेद विरूद्ध या सृष्टिक्रम विरुद्ध कहकर तुरन्त नकार देता है। यह तो सत्य है कि आर्ष ग्रन्थों में अनेक प्रक्षेप भी हुए हैं, जिसके कारण वैदिक ज्ञान–विज्ञान और भारतीय इतिहास अन्धकार में विलीन से हो गये हैं और इसी के कारण हम लोग न केवल वैदिक ज्ञान विज्ञान को भूल गये अपितु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता को छोड़ अन्य महापुरुषों की ऐतिहासिकता को न केवल भूल गये हैं बल्कि उनका नाम लेने में भी भयभीत होते हैं। इन दोनों महापुरुषों के भी कुछ विशिष्ट क्रियाकलापों को अपने बुद्धिबल से तुलना करके प्रक्षिप्त घोषित कर देते हैं और कोई–2 महानुभाव तो इनकी योग साधना को अपनी अपेक्षा भी हीन सिद्ध करते देखे जाते हैं। इससे आर्य जनता में इन दो महापुरुषों के प्रति भी पर्याप्त सम्मान भी नहीं बचा है। पौराणिक भाइयों ने इन्हें परमपिता परमात्मा बताकर प्रेरणा लेने योग्य नहीं छोड़ा तो हम आर्य समाजी कहाने वालों ने इन्हें उच्च कोटि का महापुरुष भी नहीं माना, तब वर्तमान कथित कोई प्रबुद्ध तो इनसे प्रेरणा कैसे ले सकता है? **मैं यह बात ईश्वर की साक्षी में लिख रहा हूँ कि अपने इस प्रारम्भिक व्याख्यान की समाप्ति तक न केवल महर्षि दयानन्द, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम एवं महायोगेश्वर भगवत्पाद श्रीकृष्ण के प्रति मेरी श्रद्धा अपेक्षाकृत बहुत बढ़ गयी है अपितु अनेक प्रक्षेपों, कल्पनाओं को समेटे हुए रामायण व महाभारत धारावाहिकों में भी महावीर महाप्राज्ञ हनुमान् जी, भगवती देवी माता सीता जी, धर्मधुरन्धर महात्मा भरत, शौर्यमूर्ति भ्रातृभक्त महामना लक्ष्मण, एवं इन सबके भी अत्यन्त श्रद्धा के पात्र भगवान् शिव, भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, महर्षिप्रवर अगस्त्य, भगवान् भारद्वाज आदि की महानता का अनुभव करके इन धारावाहिकों को देख–2 कर नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है। विचार आता है कि आज हम मानवों को क्या हो गया है?** व्यायाम के कारण कमर में अकस्मात् चोट लगने से विश्राम करना पड़ा और तभी इन धारावाहिकों को बार–2 देखने का अवसर प्राप्त हुआ। आज मुझे अपने पौराणिक भाइयों पर क्रोध नहीं बल्कि दया आती है कि काश! वे अपने महर्षि दयानन्द जी की पीड़ा समझने का प्रयास करते तो इन महापुरुषों का यों अस्तित्व न मिटा होता, परन्तु क्या करें? जब महर्षि के भक्त ही उन्हें नहीं समझ पाये तो वे नादान पौराणिक भाई कैसे समझेंगे? ईसाई, मुस्लिम आदि का समझना तो सम्भव

ही कैसे होता? हमारे विद्वान् इस प्रकार डंके की चोट समीक्षा करने का दावा करते हैं, मानो उन्होंने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय एवं सम्पूर्ण सृष्टि विज्ञान को गहराई से समझ रखा है। मैं उनसे विनम्र निवेदन करना चाहूँगा कि **सृष्टि और वेद दोनों को पूर्णतः समझना न केवल महाक्लिष्ट कार्य है अपितु मानव मस्तिष्क के लिए असम्भव सा कार्य है।** ऐसी स्थिति में हमें किसी विचारधारा का खण्डन करने से पहले पर्याप्त विचार कर लेना चाहिए। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि वर्तमान उच्च तकनीक और विज्ञान अनेक असम्भव प्रतीत होने वाले कार्यों को सम्भव करता जा रहा है। कहीं ऐसा न हो कि आज हम किसी विचार अथवा असम्भव प्रतीत होने वाले विचार का कठोर खण्डन करके अपनी मिथ्या ऋषि भक्ति का परिचय देने का प्रयास कर रहे हैं, उसी विचार को आने वाली विश्व की टेक्नोलॉजी साक्षात् न कर दे, जिससे हम और हमारी ऋषि भक्ति उपहास की पात्र बन जाये। आज जिन बातों को हम सृष्टिक्रम विरुद्ध कहते हैं, कहीं वे ही बातें इस पृथिवी वा अन्य लोकों में आधुनिक विज्ञान के द्वारा साक्षात् देख न ली जायें। विज्ञान की गहरी समझ और शास्त्रों के अध्ययन की यथार्थ प्रणाली से अनभिज्ञ होकर ही हम अपने को पूर्ण विज्ञ मानकर अपना अहंकार प्रदर्शित करके दूसरों को नितान्त मूर्ख समझकर उन पर मर्मभेदी प्रहार करते हैं। अब ये प्रहार दूसरों पर कम आपस में अधिक हो रहे हैं। खण्डन का स्वभाव तो है ही, तो दूसरों का न सही तो अपना ही कर लें। यह दुःखद दृश्य आज अल्प ज्ञान के कारण ही दिखाई दे रहा है। मैं यह बात अपने अनुभव से लिख रहा हूँ और कई शताब्दियों पूर्व महात्मा भर्तृहरि जी के शब्दों में आप से भी निवेदित करना चाहता हूँ–

''**यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्**
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतम्
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।। नीतिशतक, श्लोक ८।''

अर्थात् जब मैं थोड़ा जानता था, तब हाथी के समान घमण्ड में अन्धा हो गया था। उस समय इस भाव से मेरा मन भरा हुआ था कि मैं सब कुछ जानता हूँ। जब विद्वान् लोगों की संगति से मैंने कुछ–2 जाना, तब पता चला कि मैं तो मूर्ख हूँ। तभी ज्वर के समान मेरा घमण्ड मिट गया। मेरे विद्वद्बन्धुओ! मेरा विनम्र अनुरोध है कि आप भी इस विचार को बार–2 दोहराते हुए शास्त्रों को पुनः गहराई से पढ़ो तो आपका भी अहंकार निश्चित ही दूर हो जायेगा।

इन सबका तात्पर्य यह भी नहीं है कि हर पाप, पाखण्ड और चमत्कारों को कल्पित विज्ञान की चादर से ढकने का प्रयास करने वालों का खण्डन न किया जाये, गंगा की आरती, भागवत्–पुराणादि कुग्रन्थ–पूजा, मूर्तिपूजा, ईश्वर अवतार, जन्मना जाति व्यवस्था, भूत प्रेतादि एवं मृतक श्राद्धादि का समर्थन करके धन और प्रतिष्ठा के लाभ के साथ–2 हिन्दू एकता व मानव एकता की मृगतृष्णा में प्यास बुझाने का यत्न किया जाये। आज जो ऐसा कर रहे हैं, वे चाहे महर्षि दयानन्द जी महाराज के नाम की माला ही क्यों न जपें, महर्षि दयानन्द जी ही नहीं अपितु महर्षि ब्रह्मा जी महाराज से चली आ रही समस्त आर्ष वैदिक प्रणाली का ही नाश करने का घोर पाप कर रहे हैं। हमें ध्यान रखना चाहिए कि धर्म की पहिचान, धन, ऐश्वर्य वा भीड़ से नहीं होती अपितु निर्मल सत्य ही धर्म की प्रमुख पहिचान है। हाँ, मेरा निवेदन इतना अवश्य है कि जब तक अपने पास पूर्ण विवेकी वैज्ञानिक बुद्धि, परमपिता परमात्मा के प्रति अटूट समर्पण भाव, खण्डन करने की निष्काम आत्मीयतापूर्ण परहित भावना होने के साथ ईर्ष्या, राग, द्वेष, काम, क्रोध, अहंकार आदि के त्याग का भाव विद्यमान न हो, तब तक केवल खण्डन के लिए खण्डन नहीं होना चाहिए और जो सत्य एवं आत्मीय भावना से प्रेरित होकर किसी विचार का खण्डन करे तो प्रतिपक्षी को उस पर क्रोध करने का पाप भी कभी नहीं करना चाहिए, अपितु उस खण्डनकर्ता विवेकी, सर्वहितैषी विद्वान् को कड़वी औषधि देने वाले सुयोग्य चिकित्सक के समान मानकर आदर और सम्मान प्रदान करना चाहिए। इससे मानव जाति का बहुत उपकार होगा क्योंकि भगवान् दयानन्द के शब्दों में सत्य से बढ़कर मानव उन्नति का कोई अन्य कारण नहीं है।

संसार के महान् वैज्ञानिकों की सेवा में निवेदन

हम आपकी शोध परम्परा पर पिछले कुछ पृष्ठों में कुछ प्रश्न खड़े कर चुके हैं, उसका तात्पर्य यह नहीं है कि आप सत्य के अनुसंधानकर्ता नहीं हैं। प्रयोग, परीक्षण और गणित की महती आवश्यकता सत्य विज्ञान को सदैव रही है व रहेगी, परन्तु जहाँ हमारी गणनाएँ, प्रयोग और परीक्षण हमारी अल्पज्ञता के कारण नहीं पहुँच सकें, उनको सर्वथा नकारना भी उचित नहीं है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान सृष्टि के उन रहस्यों को जान गया व जान रहा है, जिसकी कल्पना भी कथित वर्तमान धर्माचार्यों ने नहीं की है और न करना चाहते हैं, पुनरपि वर्तमान विज्ञान की एक सीमा है, जिसका उसे ध्यान अवश्य रहना चाहिए। **मैं यह विश्वास करता हूँ कि मेरे ऐतरेय व्याख्यान के आधार पर सृष्टि–विज्ञान जिसमें कॉस्मोलॉजी, ऐस्ट्रोफिजिक्स, ऐस्ट्रोनॉमी, ऐटॉमिक–न्यूक्लियर फिजिक्स, पार्टिकल फिजिक्स, सोलर–प्लाज्मा फिजिक्स आदि सम्मिलित हैं, के क्षेत्र में काम करने वाले महान् वैज्ञानिकों के लिए कुछ ऐसे रहस्य प्राप्त होंगे, जिनमें से कुछ की उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी। मैं इस क्षेत्र में एक ऐसे गूढ़ विज्ञान की कल्पना कर रहा हूँ, जिससे उपर्युक्त विषयों में एक नयी दृष्टि और नयी परम्परा मिल सकेगी।** इस प्रारम्भिक व्याख्यान में ऐतरेय विज्ञान की भाषा अनेकत्र प्राचीन शैली की होने के कारण वर्तमान वैज्ञानिकों से उसकी चर्चा करना अभी अनावश्यक प्रतीत होता है। जब तक मैं उस प्राचीन भाषा को वर्तमान विज्ञान की भाषा के साथ यथासम्भव संगत करने का काम पूरा करके अपने व्याख्यान को अन्तिम रूप नहीं दे दूँगा, तब तक मेरा व्याख्यान पं. मधुसूदन जी ओझा के कल्पित व्याख्यानों के लगभग समान ही दिखायी देगा, जो मुझे कदापि अभिष्ट नहीं है। **वैसे मैं अब तक अपने किये गये प्रारम्भिक व्याख्यान को पं. ओझा जी के शतपथ ब्राह्मण आदि के व्याख्यान, जिनके कारण वे वैदिक वाङ्मय के भारतविख्यात वेदविज्ञानगवेषक माने जाते थे, की अपेक्षा अधिक स्पष्ट, आर्ष परम्परा एवं वर्तमान विज्ञान के अनुकूल मानता हूँ, पुनरपि अभी मैं बहुत स्पष्ट, विस्तृत एवं वर्तमान भाषा में लिखना चाहता हूँ। मैं ऐसा भाष्य लिखना चाहता हूँ कि जिसे देखकर वैदिक विद्वान् भी विज्ञान के रहस्यों को समझ सकें तथा उसका अनुसरण करके वे अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों वा वेदों का वैज्ञानिक भाष्य करने की शैली को सीख सकें तथा वर्तमान वैज्ञानिक मेरे भाष्य से अनेक ऐसे क्षेत्रों का पता लगा सकें, जहाँ कई प्रकार की गम्भीर शोध की सम्भावना हैं तथा अनेक रहस्यों का स्पष्ट उद्घाटन कर सकें।** परन्तु अभी प्रारम्भिक कार्य को मैं सबके सम्मुख प्रकाशित नहीं कर सकता। इसी कारण मैं विश्वप्रसिद्ध खगोलवैज्ञानिक मान्यवर प्रो. आभासकुमार जी मित्रा, प्रख्यात खगोलविद् प्रो. ए.आर. राव एवं प्रसिद्ध पार्टिकल फिजिसिस्ट प्रो. एन.के. मण्डल से चर्चा के दौरान आधुनिक विज्ञान की जानकारी तो प्राप्त करता रहा परन्तु अपने ऐतरेय अथवा वैदिक विज्ञान पर अपवाद के अतिरिक्त कोई स्पष्टीकरण देने से बचता रहा। इतना होने पर भी अपने प्रारम्भिक व्याख्यान में निम्न लिखित 100 महत्वपूर्ण प्रश्नों,

जो आधुनिक विश्व स्तरीय विज्ञान के समक्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं एवं मैंने इनमें से 69 प्रश्नों पर तीनों महान् वैज्ञानिकों से उनके विचार जानने का प्रयास किया है और निम्न लिखित निष्कर्ष निकाले–

1. कुछ प्रश्नों के उत्तर आधुनिक विज्ञान वही देता है, जो मेरे प्रारम्भिक व्याख्यान से प्राप्त हो रहे हैं।
2. कुछ प्रश्नों के मेरे उत्तरों से वैज्ञानिकों के उत्तर भिन्न हैं।
3. कुछ प्रश्नों पर आधुनिक विज्ञान ने विचार ही नहीं किया है।
4. कुछ प्रश्नों को आधुनिक विज्ञान आश्चर्य की दृष्टि से देखता है।

इन 100 प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर मेरे प्रारम्भिक व्याख्यान में आज भी उपलब्ध है। वे प्रश्न निम्न लिखित हैं–

1. कोई भी क्वाण्टा किसी इलेक्ट्रोनादि से किस दिशा से संयुक्त होता है?
2. नेब्यूला में सर्वप्रथम किस दिशा में अधिक ऊष्मा उत्पन्न होती है?
3. दो सूक्ष्म कण वा पिण्ड परस्पर पूर्ण संयुक्त (विलय) क्यों नहीं हो सकते? एक निश्चित दूरी के उपरान्त उनमें प्रतिकर्षण बल क्यों उत्पन्न होता है? जिसके कारण उन दोनों के बीच में कुछ न कुछ अवकाश अवश्य रह जाता है। सूक्ष्म कणों (न्यूट्रोन, क्वार्क्स, इलेक्ट्रोन आदि) में संयोग की दिशा क्या होती है? प्रतिकर्षण व आकर्षण के लिये कौन–कौन से सूक्ष्म पदार्थ उत्तरदायी हैं? उन पदार्थों का स्वरूप क्या होता है?
4. तारों में नाभिकीय संलयन के लिये आवश्यक पदार्थ अथवा गैस–धूल आदि के मेघों में बाहरी पदार्थ किस–किस प्रकार व किस–किस मार्ग से होता हुआ केन्द्रीय भाग तक पहुँचता है ?
5. दो तरंगों के Supur position के पश्चात् वे दोनों ही तरंगें पूर्ववत् आगे क्यों बढ़ जाती है जबकि कणों की टक्कर से ऐसा सम्भव नहीं है? इस महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सुव्यवस्था का कारण कौन सा बल आदि पदार्थ है ?
6. किसी बाहरी इलेक्ट्रॉन के किसी एटम से मिलने पर उस एटम के इलेक्ट्रॉनों की कक्षाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा और इस प्रभाव के लिये कौन से फील्ड्स उत्तरदायी होंगे ?
7. नेब्यूला के अन्दर वाले पदार्थ व उसके अन्दर विद्यमान डार्क तत्व में कैसे व किस दिशा में सर्वप्रथम संघर्ष होता है? उस डार्क पदार्थ के प्रबल प्रभाव को कौन पदार्थ कैसे निष्प्रभावी रखता और सृष्टि प्रक्रिया जारी रहती है? वह डार्क तत्व कहाँ–कहाँ से व कैसे–कैसे दूर किया जाता है? उस समय कौन–कौन से फील्ड्स काम करते हैं। उस डार्क पदार्थ व अन्य पदार्थ के युद्ध का क्या स्वरूप होता है? उस समय विद्युत् आवेश का उतार–चढ़ाव का कैसा खेल चलता है ?
8. क्या उस डार्क पदार्थ में परस्पर कोई Interaction होकर संयोगादि प्रक्रिया होती है ? डार्क पदार्थ की उत्पत्ति कब व कैसे होती है?
9. डार्क पदार्थ (मैटर व इनर्जी) का स्वरूप क्या है?
10. क्वाण्टा का स्वरूप क्या है? उसके अन्दर किस–किस प्रकार की शक्तियाँ व गुण छुपे रहते हैं? वे क्वाण्टाज् अति तीव्र गति से सतत कैसे चलते रहते हैं?
11. बल का स्वरूप क्या है तथा वे किस क्रम से व कैसे उत्पन्न होते हैं?
12. ब्रह्माण्ड में कितने प्रकार के फील्ड्स होते हैं और वे कैसे उत्पन्न होते हैं?
13. तारों में प्रकाश, ऊष्मा आदि के उत्पादन में कौन कौन से फील्ड्स की क्या क्या भूमिका होती है ?
14. नेब्यूलाओं व तारों आदि का निर्माण कैसे होता है? इनकी उत्पत्ति के समय कौन–कौन से फील्ड्स सक्रिय होते हैं? तारों के अन्दर सर्वप्रथम नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के लिए कौन–कौन से फील्ड्स उत्तरदायी हैं?
15. दो कण, आयन वा पिण्ड आदि जब संयुक्त होते हैं तब उनके संयोग में क्या कोई तत्व (बल) बाधा डालने का प्रयास करते हैं यदि हाँ, तो वे कौन से बल हैं तथा उनको निष्क्रिय करके कौन उन्हें संयुक्त करता है और संयोग के उपरान्त उन कणों वा पिण्डों के अन्दर व बाहर के फील्ड्स किस प्रकार व्यवस्थित होते हैं?

16. तारों, आकाश गंगाओं व एटम आदि के बाहरी व आन्तरिक भाग के स्व परिधि में परिक्रमण काल में क्या कोई अन्तर होता है और यदि हाँ, तो क्यों व क्या?
17. किसी कण, पिण्ड वा आकाशीय लोक के आकार के निर्माण व स्थायित्व के लिए कौन–कौन से फील्ड्स उत्तरदायी होते हैं?
18. सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ किस स्थिति से व किस क्रम से होता है?
19. ब्रह्माण्ड में ऊष्मा की उत्पत्ति एक ही स्थान पर होकर फैलती जाती है अथवा एक साथ अथवा क्रमशः भिन्न–भिन्न स्थानों पर उत्पन्न होती है?
20. विद्युत् क्या है व उसके कितने रूप होते हैं? उसके रूप प्रारम्भ से ही अनेक होते हैं अथवा एक रूप से बाद में धीरे–धीरे अनेक रूप उत्पन्न होते जाते हैं?
21. तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन के क्षेत्र का सम्पूर्ण तारे के क्षेत्र का क्या अनुपात होता है? उस संलयन वाले क्षेत्र में भी क्या भिन्न क्षेत्र होते हैं?
22. ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम कौन–कौन से फील्ड्स व किस क्रम से उत्पन्न होते हैं? ऊर्जाओं की उत्पत्ति का क्रम क्या होता है?
23. विद्युत् आवेशित कणों व क्वाण्टाज् के अन्दर व बाहर कौन–कौन फील्ड्स होते हैं और उनका क्या–क्या कार्य होता है?
24. मूल कणों के वे कौन–कौन से गुण हैं, जो उनके साथ अनिवार्य रूप से रहते हैं?
25. मूल बल कितने होते हैं और उनके पश्चात् द्वितीय मूल बल कितने व कौन–कौन से होते हैं?
26. सर्वाधिक गतिशील कौन व क्यों होता है?
27. सभी बलों की उत्पत्ति का मूल कारण क्या होता है?
28. सर्वप्रथम गति कैसे उत्पन्न होती है?
29. ऊष्मा की प्रथम उत्पत्ति का रहस्य क्या है?
30. नाभिकीय संलयन विहीन लोकों के केन्द्रीय भाग में स्थित ऊष्मा बहिर्गमन क्यों नहीं करती? कौन तत्व इसको रोकने के लिए उत्तरदायी है?
31. फील्ड्स व बलों में परस्पर क्या सम्बन्ध है? इनका स्वरूप क्या है?
32. तापमान का गुरूत्वाकर्षण बल से क्या सम्बन्ध है?
33. तेज (दीप्ति) की सृष्टि उत्पत्ति में क्या भूमिका होती है? तेज व बल का परस्पर सम्बन्ध क्या है?
34. तारों के अन्दर उत्पन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें दूरस्थ लोकों तक जाते–जाते किस–किस के द्वारा किस–किस प्रकार के परिवर्तनों से होकर गुजरती हैं?
35. सृष्टि अत्यन्त तीव्र विस्फोट से उत्पन्न हुई अथवा प्रारम्भिक हल्की हरकत से?
36. मूल कणों वा अन्य कणों में प्रमुखतः सात प्रकार के कौन–कौन से वायु कार्य करते हैं? जो उन्हें नियन्त्रित व संचालित करते हैं।
37. सृष्टि में ऊष्मा की उत्पत्ति कैसे होती हैं? इसके लिए मूलतः कौन से पदार्थ उत्तरदायी होते हैं?
38. कण व प्रतिकण मिल कर ऊर्जा कैसे उत्पन्न करते हैं?
39. सृष्टि रचना में उत्पन्न ऊष्मा सतत वर्धमान होती है अथवा निरन्तर कम होती जाती है अथवा उतार चढ़ाव होता रहता है?
40. किसी कण के चतुर्दिक् किस–2 प्रकार के आवरण होते हैं और उनकी क्या भूमिका होती है?
41. किसी भी लोक अथवा कण पर किस–2 प्रकार के विकिरणों का प्रहार होता है और उससे क्या सिद्ध होता है?
42. विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की कितनी शक्तियां होती है?
43. कौन–2 से कण किस कारण सृष्टि प्रक्रिया से अलग थलग पड़ जाते हैं और वे दूर शान्त पड़े रहते हैं? फिर वे पुनः कैसे सृष्टि प्रक्रिया से जुड़ जाते हैं?

44. क्या डार्क पदार्थ विभिन्न लोकों को धारण करने में कोई भूमिका निभाता है? यदि हॉ, तो कैसे और क्या? फिर वह डार्क पदार्थ किस पर आश्रित होता है? इस आश्रित आश्रय की श्रृंखला क्या है?
45. किसी भी लोक वा कण में विस्फोट के लिए किस प्रकार का वायु तत्व उत्तरदायी होता है?
46. सभी प्रकार के कण वा लोक परस्पर किन प्रकार के फील्ड्स द्वारा बंधे व मर्यादित रहते हैं?
47. सृष्टि प्रक्रिया के चलते–2 क्या कोई विराम भी आता है? यदि हां, तो किस कारण तथा कौन व कैसे उसका निवारण करता है? वह निवारक तत्व सभी कणों को कैसे एक ताने बाने में बुनता है?
48. कौन सा तत्व विभिन्न फील्ड्स में विभेद करता है?
49. सृष्टि प्रक्रिया में क्या कभी ऐसा भी होता है कि ऊष्मायुक्त विद्युत् आवेशित विकिरणों को कोई फील्ड अपने अधीन करके उन्हें निष्क्रिय करने का प्रयास करता है? यदि हॉ, तो कौन सा तत्व उस निष्क्रिय करने वाले तत्व (फील्ड) से संघर्ष करके सर्ग प्रक्रिया को यथावत बनाये रखता है? फिर भी वह निष्क्रिय करने वाले तत्व आवेशित कणों पर प्रहार करते हैं तब कौन प्रबल तत्व (वायु) उसे दूर करके विद्युत् आवेशित कणों का स्थायी सुरक्षा कवच बना?
50. क्या पूर्व में डार्क पदार्थ सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर सब पर शासन कर रहा था? तब फिर कौन सी शक्ति ने उस डार्क पदार्थ पर विजय पाकर दृश्य पदार्थ को संगठित किया था? उस समय दृश्य पदार्थ कौन–2 सी श्रेणियों में विभक्त था?
51. आवेशयुक्त कणों की शक्ति का मूल कारण कौन सा वायु है? उसका स्वरूप क्या है?
52. कौन सा वायु तत्व सभी कणों को सक्रिय रखता व धारण किये रहता है? तथा उसके द्वारा ही सृष्टि प्रक्रिया सतत विस्तृत होती जाती है।
53. ऊर्जा व इलेक्ट्रोन्स द्वारा अवशोषण होकर पुनः उत्सर्जन क्यों व किस वायु के कारण होता है?
54. सबसे प्राथमिक मूल बल कौन सा है जो अन्य प्रकार के बलों में परिवर्तित हुआ और इसके पश्चात् भी मूल बल का कुछ भाग अपरिवर्तित ही रहता है। तब वह अपरिवर्तित मूल बल किन फील्ड्स (वायु) के सहयोग से विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं को अपने आधीन रख पाया था?
55. एक कौनसा फील्ड ऐसा है, जो अन्य सभी फील्ड्स व विभिन्न परमाणुओं के मध्य स्थित होता है?
56. जब डार्क पदार्थ व वैद्युत् ऊष्म विकिरण में घोर संघर्ष से महान् घोष हुआ और समस्त दृश्य पदार्थ उस समय वहॉ से दूर भाग गया तब कौन से ऐसे सूक्ष्म वायु थे, जो वैद्युत ऊष्म विकिरणों के साथ ही रहे ओर तब एक अन्य वायु ने उस सूक्ष्म वायु का सहयोग किया था। वह सूक्ष्म वायु तब से समस्त वैद्युत कणों के साथ सदा संयुक्त रहता हैं?
57. क्या कोई ऐसा सूक्ष्मतम फील्ड है जो ब्रह्माण्ड भर के सभी प्रकार के फील्ड व मूलकणों को अपने साथ बाँधे रखता है? अथवा सभी फील्ड परस्पर सदैव पूर्ण स्वतन्त्र ही होते हैं?
58. विद्युत् समन्वित प्राणतत्व की शक्ति का क्या स्वरूप होता है? व उसके क्या–2 गुण होते हैं?
59. किसी भी प्रकार के मूलकण निरन्तर गतिशील ही रहते हैं। इस प्रकार की गति के लिये कौन सा बल (वायु) उत्तरदायी होता है?
60. प्रकाश ऊष्मादि ऊर्जा आदि के क्वाण्टाज् किस फील्ड के कारण विभिन्न कणों से संयोग करते हैं?
61. क्या पूर्व में सर्वाधिक सूक्ष्म फील्ड विभिन्न मूलकणों से पृथक् विद्यमान था? जो सृष्टि रचना के प्रारम्भ होने के कुछ काल पश्चात् मूलकणों से संयुक्त हो गया? एक ही फील्डकण (उसी फील्ड का) एक साथ अनेक मूलकणों से संयुक्त नहीं हो सकता जबकि एक ही मूल कण अनेक उस फील्ड के कणो से संयुक्त हो सकता है। जो कण उस फील्ड से संयुक्त नहीं हो पाते वे सृष्टि प्रक्रिया से पृथक् हो जाते हैं। और जो संयुक्त होते हैं, वे दो श्रृंखलाओं के पृथक्–2 पाँच चरणों से गुजरते हुये ही फिर आगे की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।
62. क्या पूर्व मे अप्रकाशित पदार्थ (परन्तु डार्क पदार्थ नहीं) तथा प्रकाशित पदार्थ परस्पर दूर–2 विद्यमान थे? तब कौन सा पदार्थ (फील्ड) उन दोनों प्रकार के पदार्थो को परस्पर मिलाने में समर्थ हुआ? उस समय अप्रकाशित पदार्थ को कौन से तत्व प्रकाशित पदार्थ से दूर रखने के लिये उत्तरदायी थे? फिर उस फील्ड से उस पदार्थ का कैसा युद्ध हुआ और वह अप्रकाशित पदार्थ अपने स्थान से प्रकाशित पदार्थ की ओर आकृष्ट होकर तेजी चल पड़ा।
63. उस प्रक्रिया में आकाश, तेज आदि कौन–2 से पदार्थ किस–2 क्रम से उत्पन्न होते हैं?
64. क्या अप्रकाशित पदार्थ वा कणों में क्वाण्टाज् आदि की अपेक्षा अधिक प्रकार के फील्ड कार्यरत होते हैं?

65. इस ब्रह्माण्ड रूपी पुरुष में कौन से वायु मानव शरीर के अंगों की भाँति ब्रह्माण्ड पुरुष के अंग का काम करते हैं? कौन से फील्ड (वायु) ब्रह्माण्डस्थ विभिन्न वायुओं को परस्पर बाँधे (सिले) रहते हैं? किस के कारण विभिन्न वायु (फील्ड) मानव शरीर के अस्थिजोड़ों के समान परस्पर मिले व शिथिल होते हुये भी सुदृढ़. होते हैं?
66. विभिन्न तेजस्वी पदार्थों को कितनी प्रमुख श्रेणियों में बांटा जा सकता हैं? और उन श्रेणियों के गुण धर्म क्या हैं?
67. पूर्व में प्रकाशित व अप्रकाशित पदार्थ में से कौन किसकी ओर आकृष्ट हुआ था और फिर आकृष्ट पदार्थ पर किस प्रकार के शक्तिशाली विकिरणों ने प्रहार करके उस अप्रकाशित जो प्रकाशित पदार्थ के साथ मिलकर प्रकाशित हो उन को छिन्न–भिन्न कर दिया। उससे फिर किस–2 प्रकार के पदार्थ किस क्रम से उत्पन्न हुये?
68. इस प्रक्रिया में क्या प्रथम उत्पन्न अणु परस्पर दूर–2 चले जा रहे थे? यदि हॉ, तो उन्हें किस प्रकार के पदार्थ ने चारों ओर से घेर कर रोका और उनका मिलन प्रारम्भ कराया? इस मिलन में किस–2 प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी?
69. विद्युत् जब किसी कण से संयुक्त होती है तब कौन से चार प्रकार के फील्ड उस विद्युत् के साथ–2 ही उस कण से संयुक्त हो जाते हैं?
70. आकाशगंगा के केन्द्र के चारों ओर ऐसे कितने क्षेत्र होते हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के फील्ड होते हैं, जो आकाशगंगा के निर्माण के समय विभिन्न तारों को अपनी–2 कक्षाओं में स्थापित करने में सहायक होते हैं। वे क्षेत्र किस क्रम से बनते हैं?
71. अपनी आकाशगंगा के तारों की उत्पत्ति के पश्चात् उनके कक्षा में स्थापित होने में कितना समय लगा?
72. आकाशगंगा के केन्द्र व उसके चारों ओर चक्कर लगा रहे तारों मे से कौन प्रथम उत्पन्न होता है? यदि लोक पूर्व उत्पन्न होते हैं तो वे बिना केन्द्र के किसके आश्रित रहते हैं और कैसे रहते हैं।
73. क्या गैलेक्सी केन्द्र भी पूर्व में विचलित होता हुआ उत्पन्न होता है? यदि हाँ, तो वह कैसे व किसके द्वारा स्थिर होता है?
74. प्रारम्भिक काल में तारे अस्थिर भटक रहे थे उस समय वे गैलेक्सी के केन्द्र से दूर थे वा निकट? क्या ऐसा भी होता है कि प्रारम्भ में अनेक तारे गैलेक्सी केन्द्र के प्रबल आकर्षण बल से उसी में समा गये तथा शेष जो बचे वे ही उसके चारों ओर परिक्रमा करने लगे?
75. क्या तारों के सभी भागों में ऊष्मा समान होती है अथवा उन पर दिशाओं का प्रभाव पड़ता है? वैसे ही क्या तारों के विद्युत् क्षेत्र सर्वत्र समान होते हैं अथवा उनमें भेद होता है?
76. क्या गैलेक्सी केन्द्र प्रारम्भ से अब तक समान गर्म रहता है अथवा उसमें कुछ वृद्धि वा न्यूनता भी होती रहती है?
77. सृष्टि निर्माण प्रक्रिया का सर्वप्रथम चरण क्या होता है तथा उससे पूर्व क्या विद्यमान रहता है?
78. सर्वप्रथम गुरुत्व बल कब व कैसे उत्पन्न होता है?
79. द्रव्यमान की उत्पत्ति सर्वप्रथम कैसे व किसमें होती है?
80. कोई भी कण क्वाण्टा व इलेक्ट्रॉनादि के प्रति क्यों व कैसे आकर्षित होता है? उसके मिलने की प्रक्रिया क्या होती है?
81. आकाशतत्व (Space) की उत्पत्ति सर्वप्रथम कैसे व किससे होती है?
82. क्या कोई ऐसा तत्व है, जो हर कण से संयुक्त होकर उसे गति प्रदान करता है?
83. क्या तारों के अन्दर सम्पूर्ण क्षेत्र में घनत्व समान होता है अथवा असमान? इसी प्रकार उसके केन्द्रीय भाग जिसमें संलयन क्रिया होती है, वहाँ क्या घनत्व समान होता है वा असमान?
84. क्या कभी–2 तारों के केन्द्रीय भाग में भी विस्फोट होकर उसमें भरा पदार्थ बहिर्गमन करने लग सकता है? यदि हां, तो इसको कौन व कैसे रोकता है?
85. सूर्य्य से ग्रह किस प्रकार पृथक् होते हैं? कौन सा बल उन पिण्डों को दूर धकेलता है? क्या वे सभी ग्रह एक साथ ही अकस्मात् सूर्य के बल से दूर फैंक दिये जाते हैं अथवा उन्हें इस कार्य में पर्याप्त समय लगता है?
86. पृथिवी व सूर्य में से कौन व कैसे पूर्व उत्पन्न हुआ?
87. विद्युदावेश की उत्पत्ति सर्वप्रथम कैसे व कहाँ होती है?

88. सम्पूर्ण सूर्य को कितने मुख्य भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है?

क्या निम्न लिखित (प्रश्न 97 तक) घटनायें ब्रह्माण्ड में घटती रहती हैं? यदि हाँ, तो उनका निवारण कौन व कैसे करता है?

89. यदि किसी तारे से दूसरा तारा वा कोई भी पिण्ड टकरा जाये तब क्या होता है?
90. यदि किसी तारे के निकट कोई अन्य तारा तेजी से गुजरे और उसके आकर्षण के प्रभाव से तारे का पदार्थ बाहर की ओर बहने लगे, तब क्या होगा?
91. यदि दो तारों की टक्कर से एक तारा टूट ही जाये तो क्या होगा?
92. यदि किसी तारे के केन्द्रीय भाग के अतिरिक्त भाग में विद्यमान विभिन्न फील्ड किसी बाहरी वा आन्तरिक कारण से दुर्बल हो जायें अथवा उनका प्रवाह बाहर की ओर हो जाये, तब क्या होगा?
93. किसी तारे के केन्द्रीय व बाहरी भाग में स्थित विभिन्न फील्ड क्या किसी बल द्वारा पृथक्–2 सीमा में बद्ध होते हैं? यदि हाँ, तो वह सीमा क्या किसी कारणवश टूट भी सकती है? यदि हाँ, तो ऐसा होने पर क्या होगा?
94. क्या कभी कोई तारा किसी दूरस्थ तारे में से किसी दुर्घटनावश निकले रेडियेशन अथवा वैद्युत् कणों के प्रहार के प्रभाव से विक्षुब्ध व अति तप्त भी हो सकता है? यदि हाँ, तब क्या होता है?
95. यदि किसी तारे में बाहर से कोई ऐसे पदार्थ गिर जायें, जो तारे के अन्दर विद्यमान विभिन्न फील्ड्स को अस्त व्यस्त कर दें, तब क्या होगा?
96. यदि किसी तारे से अन्य तारे की टक्कर से केन्द्रीय भाग को छोड़ अन्य भाग अलग चला जाये तब केन्द्रीय भागस्थ पदार्थ का क्या होगा?
97. यदि किसी तारे के केन्द्रीय भाग व शेष भाग के बीच किसी कारण अवकाश बढ़ जाये, तब क्या होगा?
98. ऊर्जा की उत्पत्ति सर्वप्रथम कैसे होती है और सर्वप्रथम कौन सी ऊर्जा उत्पन्न होती है?
99. सर्वप्रथम नाभिकीय संलयन क्रिया कैसे प्रारम्भ होती है? उस समय क्या–2 प्रक्रियायें होती है?
100. नेब्यूला में विद्यमान पदार्थ का क्या बाहरी किसी ऐसे पदार्थ से संघर्ष होता है, जो नेब्यूला के पदार्थ को बाधित करने का प्रयास करता है? यदि हॉ, तो यह संघर्ष सर्वप्रथम किस दिशा में प्रारम्भ होता है और कैसे होता है?

इन प्रश्नों के आधार पर मैं अपने प्रारम्भिक व्याख्यान में अब कहीं भी सृष्टि उत्पत्ति के बिग–बैंग सिद्धान्त को नहीं पा रहा हूँ। इन प्रश्नों में अनेकत्र जिस डार्क पदार्थ की चर्चा है, उससे बिग बैंग थ्योरी के डार्क पदार्थ का ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। फिर यह कैसा पदार्थ है, इसका स्पष्टीकरण भी मैं अन्तिम व्याख्यान में ही दे सकूंगा। यह पदार्थ अप्रकाशित होता है, इस कारण अभी मैंने इसे डार्क पदार्थ ही लिखना उचित समझा है। जब वर्तमान विज्ञान भी डार्क मैटर और डार्क एनर्जी को स्पष्ट स्वरूप नहीं दे सका है, तो मेरे द्वारा इस प्रारम्भिक व्याख्यान में अप्रकाशित पदार्थ, जिसे मैंने डार्क पदार्थ नाम दिया है, को स्पष्ट न कर पाना दोषयुक्त नहीं माना जा सकता। ''सृष्टि का निर्माण कभी नहीं हुआ बल्कि यह अनादि है'', ऐसा भी हमारा मन्तव्य नहीं है, ऐसा मेरे प्रारम्भिक व्याख्यान के आधार पर सिद्ध होता है। **बल्कि एक ऐसी मान्यता यहाँ पुष्ट होती है, जिसमें सृष्टि और प्रलय का क्रम रात–दिन की भाँति अनादि और अनन्त है परन्तु कोई भी सृष्टि और प्रलय स्वयं में अनादि अनन्त नहीं है। सृष्टि जिस मूल पदार्थ से बनी है, वह प्रलय में भी अदृश्य और सूक्ष्मतम रूप में सदैव विद्यमान रहता है। न कोई पदार्थ शून्य से उत्पन्न हो सकता है और न शून्य में विलीन ही हो सकता है। स्थूल का मूल कारण रूप सूक्ष्मतम अवस्था में आ जाना प्रलय और मूल कारण रूप सूक्ष्मतम अवस्था वाले पदार्थ का स्थूल रूप में आ जाना सृष्टि कहलाता है। वैदिक मान्यता यह भी है कि यह कारण–कार्य–पदार्थ का रूपान्तरण सोद्देश्य, बुद्धिपूर्वक पूर्ण व्यवस्थित और निश्चित नियमों से बंधा होता है। इस कारण जड़ पदार्थ में यह परिवर्तन स्वयं कथमपि सम्भव नहीं है। इसके लिए एक ऐसी चेतन सत्ता की आवश्यकता होती है, जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, निराकार आदि गुणों से परिपूर्ण हो। इस सत्ता को ईश्वरादि किसी भी नाम से सम्बोधित किया जा सकता है, परन्तु उसका स्वरूप यही होगा।**

प्रश्न– आपका कहना है कि उपर्युक्त 100 प्रश्नों के उत्तर आज भी मेरे रफ व्याख्यान में उपलब्ध हैं, तब आप इनको सार्वजनिक क्यों नहीं करते? जिससे वैज्ञानिक जगत् उनकी समीक्षा कर सके और आपके कार्य की महत्ता भी अभी से प्रमाणित हो सके।

उत्तर– मुझे इस विषय में कोई जल्दबाजी नहीं है। इसके दो मुख्य कारण हैं–

1. रफ व्याख्यान के आधार पर मैं आज जो उत्तर दूँगा, उसमें अन्तिम व्याख्यान के होने तक कुछ परिवर्तन भी आ सकता है। इस कारण इस समय उत्तर देना, वह भी उच्च स्तरीय वैज्ञानिकों को, अपरिपक्वता का सूचक ही होगा। किसी आम्रवृक्ष पर लगे कच्चे आमों को देखकर कोई उतावला व्यक्ति कृषक से आम खिलाने का आग्रह करे तो कृषक यही कहेगा कि भाई! अभी धैर्य रखो, आम पकने दो, अन्यथा कच्चे आम खाकर दाँत खट्टे करने के अतिरिक्त क्या मिलेगा? फिर भी वह खाने लगे तो वह उतावला व्यक्ति आम्रफल की निन्दा ही करने लग जायेगा। इस कारण मेरे भाई मुझसे अभी जल्दबाजी न करें।
2. मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं महाशिवरात्रि वि. सं. २०७७ तदनुसार सन् 2021 तक विश्व के वैज्ञानिकों के समक्ष वेद की वैज्ञानिकता और ईश्वरीयता सिद्ध कर दूँगा, अन्यथा इस न्यास से त्याग पत्र दे दूँगा। इस कारण मुझे अपने कार्य को गोपनीय भी रखना अत्यावश्यक भी है।

इन दो कारणों से मैं अपना कार्य पूर्ण होने तक हर प्रश्न के उत्तर में सर्वथा मौन रहूँगा। पुनरपि मान्यवर ए. आर. राव साहब एवं मान्यवर प्रो. आभासकुमार मित्रा साहब के समक्ष सार्वजनिक रूप से निम्न लिखित चार प्रश्नों के उत्तर अपने रफ व्याख्यान के आधार पर भी दे चुका हूँ।

1. **सूर्य्यादि तारों का केन्द्रीय भाग शेष भाग से अलग–2 घूर्णन गति करता है जिनमें ऊपरी भाग केन्द्रीय भाग पर फिसलता रहता है।**
2. **सूर्य्यादि तारों के केन्द्रीय भाग जिसमें नाभिकीय संलयन की क्रिया होती रहती है, की त्रिज्या सम्पूर्ण तारे की त्रिज्या का 10 प्रतिशत के लगभग होती है।**
3. **सूर्य्य के चारों ओर एक ऐसी परत होती है, जो हर वर्ष परिवर्तित होती रहती है।**
4. **आकाशगंगा चारों ओर दस विभिन्न प्राण तत्वों के ऐसे क्षेत्र होते हैं जिनमें विद्यमान विकिरणों के कारण आकाशगंगा के निर्माण के समय विभिन्न तारामण्डलों, जो प्रारम्भ में अस्थिर होकर कम्पायमान थे, को विभिन्न कक्षाओं में स्थायित्व प्राप्त होने में मदद मिली थी।**

इनमें से तीन प्रश्नों पर अन्तर्राष्ट्रिय वैज्ञानिक लगभग सहमत हैं। चौथे के विषय में उन्होंने बताया कि छः क्षेत्र अब तक देखे जा चुके हैं, चार का अभी पता नहीं।

प्रश्न– आपके व्याख्यान से टैक्नोलॉजी का विकास किस प्रकार सम्भव हो सकेगा? क्योंकि बिना टैक्नोलॉजी के आज के वैज्ञानिक युग में कोई भी बात प्रमाणित नहीं हो सकती।

उत्तर– टैक्नोलॉजी और सैद्धान्तिक विज्ञान किसी भी विज्ञान के दो पक्ष हैं। जिनमें सैद्धान्तिक विज्ञान प्रथम है और टैक्नोलॉजी इसका अगला चरण। हर वैज्ञानिक टैक्नोलॉजिस्ट नहीं हो सकता और हर टैक्नोलॉजिस्ट वैज्ञानिक नहीं हो सकता। आइजक न्यूटन, अल्बर्ट आइंस्टीन, मैक्स प्लेंक, स्टीफन हॉकिंग, सी.वी.रमन, जयन्त विष्णु नार्लीकर, ए.के. मित्रा जैसे महान् वैज्ञानिक टैक्नोलॉजिस्ट नहीं हैं परन्तु कोई भी टैक्नोलॉजी ऐसे महान् वैज्ञानिकों के अनुसंधानों की छाया में ही जन्मती और बढ़ती रहती है। जैसे सर आइंस्टीन ने परमाणु बम नहीं बनाया परन्तु परमाणु बम या नाभिकीय ऊर्जा दोनों का जन्म आइंस्टीन के ''द्रव्य ऊर्जा विनिमय (रूपान्तरण) सिद्धान्त'' से ही हुआ। न्यूटन ने पश्चिमी जगत् में सर्वप्रथम गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की खोज की परन्तु गुरुत्वीय बल के आधार पर उन्होंने किसी टैक्नोलॉजी का विकास नहीं किया। परन्तु आज सर्वविदित है कि केवल गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त पर ही विश्व में कितनी टैक्नोलॉजी विकसित हुई। ब्रिटिश भौतिकशास्त्री जे.जे. थॉमसन ने जब इलेक्ट्रॉन की खोज की तब उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी कि उनकी खोज से एक ऐसी इलेक्ट्रोनिक्स का विकास होगा, जो सम्पूर्ण भूमण्डल में एक चमत्कार का काम करेगी। पुनरपि आज सम्पूर्ण इलेक्ट्रॉनिक्स मूल का श्रेय थॉमसन को ही जाता है। **इसलिए मैं टैक्नोलॉजी के स्वप्न देखने वालों से विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे मेरे द्वारा किसी प्रकार का कोई यंत्र बनाने का स्वप्न भी न देखें। मैं केवल वैदिक भौतिक विज्ञान के मूल रहस्यों को ही उद्घाटित करने का प्रयास करूँगा। विज्ञान का हर सिद्धान्त परमात्मा की दृष्टि में सर्वत्र स्थापित है, जिसे महान् वैज्ञानिक अपने संसाधनों द्वारा एवं उच्च कोटि के दार्शनिक, योगी, ऋषि अपने ध्यान, मनन द्वारा देखने का प्रयास करते हैं।** किसी भी टैक्नोलॉजी या वैज्ञानिक सिद्धान्त की परिकल्पना इन दोनों ही प्रकार के अनुसंधानकर्ताओं के मन में ही उत्पन्न होती है। उसके बाद वे लोग उसकी पुष्टि में विभिन्न प्रयोग और परीक्षण करते हैं। इसलिए मैं कहा करता हूँ कि विज्ञान का जन्म दर्शन से ही होता है। न्यूटन का गिरते हुए सेव को देखना और यह अनुमान करना कि पृथिवी ने सेव को नीचे खींचा है, दर्शन है, आधुनिक भाषा का विज्ञान नहीं। किन्तु जब इस अनुमान के आधार पर बार–2 प्रयोग करके अपने परिणामों की पुष्टि की तो वही दर्शन आधुनिक शैली के विज्ञान के

रूप में विकसित हुआ। यही प्रक्रिया हर वैज्ञानिक सिद्धान्त की होती है। जब यही विज्ञान विभिन्न क्रिया कौशल के द्वारा नाना यन्त्रों के निर्माण में काम आता है, तो वही विज्ञान फिर टैक्नोलॉजी के रूप में साक्षात् होता है। इस प्रकार इस सबका मूल ऐसा दर्शन है जो निरा काल्पनिक न हो बल्कि जिसे प्रयोगों अथवा गणितीय संकल्पनाओं द्वारा पुष्ट किये जाने की अधिकाधिक सम्भावना हो। **मेरा यह ऐतरेय व्याख्यान ऐसे ही दार्शनिक विज्ञान का स्रोत होगा, जिसके द्वारा आधुनिक विज्ञान की विशेषकर फिजिक्स की अनेक जटिल समस्याओं का उचित समाधान प्रस्तुत करेगा। कई स्थलों पर आधुनिक विज्ञान को संशोधित करने का भी काम करेगा। सृष्टि के उन अनसुलझे और अकल्पित रहस्यों के उद्‌घाटन में भी विशेष भूमिका निभायेगा, जिनका कभी प्राचीन ऋषि–मुनियों और देवों को ज्ञान था।** इस सबके आधार पर मैं विश्वास करता हूँ कि आधुनिक महान् वैज्ञानिक और विश्व की राजनीति सर्वप्रथम तो कलुषित स्वार्थपरक भारतीय राजनीति संकीर्ण मानसिकता को त्यागकर इस क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रयास करेंगे, तो उन्हें प्राचीन वैदिक विज्ञान और टैक्नोलॉजी के चमत्कारी संकेत मिल सकते हैं। और उस पर काम उन्हीं को करना है, मुझे नहीं।

प्रश्न– आपका सृष्टि विज्ञान वर्तमान सृष्टि विज्ञान की किस विचारधारा के अधिक निकट होगा?

उत्तर– जैसा कि हम पूर्व में कह चुके हैं कि हमारा यह वैदिक सृष्टि विज्ञान बिग बैंग थ्यौरी अथवा अन्य किसी भी थ्यौरी से भिन्न है, जो दो चेतन सत्ताएं ईश्वर, जीवात्मा एवं एक जड़ सत्ता प्रकृति अर्थात् ब्रह्माण्ड जिससे बना वह सूक्ष्मतम मूल पदार्थ, जो प्रलय काल में सर्वत्र बिखरा रहता है, को मानता है। जैसा कि हम कह चुके हैं कि सृष्टि और प्रलय का क्रम अनादि काल से चलता आ रहा है। मैं अपने चिन्तन के आधार पर विश्व के वैज्ञानिकों से यह निवेदन अवश्य करना चाहूँगा कि जिनेवा की CERN प्रयोगशाला में जो महाप्रयोग चल रहा है, उससे सृष्टि के सभी रहस्यों का उद्‌घाटन नहीं हो पायेगा अर्थात् वर्तमान भौतिक विज्ञान की सारी समस्याओं का समाधान इस प्रयोग से सम्भव नहीं होगा। मैं यह भी निवेदन करना चाहूँगा कि विगत शताब्दी में लगभग 20–30 वर्ष तक विश्व के अनेक वैज्ञानिकों ने Stning Theory को लेकर जो काम किया था, उसे बन्द नहीं करना चाहिए था। इस थ्यौरी के विषय में Lee Smolin अपनी पुस्तक The Trouble with Physics में लिखते हैं–

"It posits that the world contains as yet unseen dimensions and many more particles then are presently known. At the same time, it proposes that all the elementary particles arise from the vibrations of a single entity a string – that obeys simple and beautiful laws. It claims to be the one theory that unifies all the particles and all the forces in nature."(Introduction page- xiii-xiv) वस्तु स्थिति यह है कि विश्व में वर्तमान में ज्ञात आयामों एवं प्रारम्भिक कणों से कहीं अधिक आयाम एवं कण स्थित हैं। इसी समय, यह इंगित करता है कि सभी प्रारम्भिक कण एक स्वतंत्र स्थिति वाली श्रृंखला के स्पन्दनों से उत्पन्न होते हैं, जो कि सामान्य एवं सुन्दर नियमों का पालन करती हैं। यह स्थापित करता है कि प्रकृति के सभी कण एवं बल किसी एक ही नियम में संधे हैं।

जिस थ्यौरी पर हजारों वैज्ञानिकों ने काम किया परन्तु बीस वा तीस वर्ष में भी कोई परिणाम नहीं निकला, इसके प्रमाण के रूप में Mr. Smolin तीन वैज्ञानिकों को उद्‌घृत करते हुए लिखते हैं–

1. Gerard't Huf a nobel prize winner for his work in elementary particle physics, has characterized the state of string theory this way: "Actually, I would not even be prepared to call string theory a 'theory', rather a 'model', or not even that: just a hunch."(Introduction, page-xv) गेरार्ड हुफ– नोबेल पुरस्कृत विजेता (प्रारम्भिक कण भौतिकी) कहते हैं, ''वास्तव में, मैं स्ट्रिंग थ्योरी को एक मॉडल के अतिरिक्त कोई सिद्धान्त या संकेत नहीं मानता।''
2. David Gross, a nobel laureate for his work on the standard model, has since become one of the most aggressive and formidable champions of string theory....... dgrs gSa& "We don't know what we are talking about?"(Introduction, page-xv) अपने कार्य से स्ट्रिंग थ्यौरी के सबसे प्रबल समर्थकों में से प्रमुखतम नोबेल पुरस्कार विजेता डेविड ग्रोस कहते हैं 'हम नहीं जानते हम किसके बारे में बात कर रहे हैं।'
3. Brian Greene (String Theorist) अपनी latest book – The Fabric of the Cosmos: में लिखते हैं "Even today, more than three decades after its initial articulation, most string practitioners believe we still don't have a comprehensive answer to the rudimentary question, what is string theory?(Introduction, page-xv) ब्रायन ग्रीन (स्ट्रिंग थ्योरी के समर्थक) अपनी नवीनतम पुस्तक 'The Fabric of the Cosmos' में कहते हैं– अद्यावधि इसको तीन से अधिक दशाब्दियाँ बीतने के बाद भी अधिकांश

स्ट्रिंग थ्योरी के प्रायोगिक कार्यकर्ता मानते हैं कि हमारे पास इस प्रारम्भिक साधारण प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है कि 'स्ट्रिंग थ्योरी क्या है?'

इन उदाहरणों से मेरा तात्पर्य है कि भले ही String Theory 30 वर्ष के असफल परिश्रम के पश्चात् बड़े–2 नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक हताश हो गये हों परन्तु मेरी दृष्टि में ऐसी हताशा उचित नहीं। मैं String Theory को पूर्णतः निराधार अनुभव नहीं करता हूँ। इसके साथ ही मैं यह निवेदन करना चाहूँगा कि ऐतरेय विज्ञान के आधार पर मेरा सृष्टि विज्ञान बिग बैंग थ्योरी, स्ट्रिंग थ्योरी जिसे अब सर्वथा त्याग दिया गया है एवं वर्तमान में देखे जा रहे कॉस्मिक फ्रैक्टल्स रूप के आधार पर बिग बैंग के सशक्त विकल्प के रूप में सृष्टि की अनादिता का सिद्धान्त आदि सबका कुछ–2 सम्मिलित रूप होकर एक सर्वथा अति व्यापक एवं भिन्न रूप होगा। जिससे इन सभी सिद्धान्तों के गुण तो विद्यमान होंगे पर दोष नहीं। इसके साथ ही मैं अपने वैज्ञानिक बन्धुओं एवं प्रयोगात्मक मार्ग के अत्याग्रही महानुभावों से यह निवेदन भी करूँगा कि जब बिना किसी प्रयोग के 30 वर्ष तक String Theory पर काम करते वैज्ञानिकों को केवल तर्क के आधार पर संसार मान्यता देता रहा है, तो मेरे ऐतरेय विज्ञान को मान्यता क्यों नहीं मिलनी चाहिए? आप सबसे निवेदन है कि मेरे इस विज्ञान को कोरा दर्शन न समझ अपने तर्क पर तोलकर फिर उस क्षेत्र में प्रयोग व गणितीय संकल्पनाओं का आश्रय लेकर देखें तो सही, परन्तु यह निवेदन मेरे अन्तिम भाष्य के बाद ही सार्थक होगा। फिर भी कम से कम अभी मेरे पूर्वोक्त एक सौ प्रश्नों की गम्भीरता तो समझने का प्रयास करें।

ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य के विभिन्न भाष्यकारों के कुछ नमूने

वैदिक वाङ्मय के क्षेत्र में आचार्य सायण को सर्व प्रसिद्ध माना जाता है। कुछ आर्य विद्वानों ने भी ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्य में इन्हीं से विशेष सहायता ली है। ऋषि दयानन्द जी महाराज को ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्य करने का अवसर मिला ही नहीं। इस कारण मैं पाठकों को अपने वैज्ञानिक व्याख्यान की तुलना आचार्य सायण के संस्कृत भाष्य एवं उन्हीं के अनुवर्ती डा. सुधाकर जी मालवीय के हिन्दी अनुवाद से करता हुआ यथार्थ की परख सुधी पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

(क) मानव इतिहास प्रतीत होने वाला प्रसंग

तं स्वर्यन्तोऽब्रुवन्नेतत् ते ब्राह्मण सहस्रमिति, तदेनं समाकुर्वाणं पुरुषः कृष्ण शवास्युत्तरत उपोत्थायाब्रवीन्मम वा इदं मम वै वास्तुहमिति, सोऽब्रवीन्मह्यं वा इदमदुरिति, तमब्रवीत् तद्वै नौ तवैव पितरि प्रश्न इति; स पितरमैत् तं पिताऽब्रवीन्ननु ते पुत्रकादू३रित्यदुरेव म इत्यब्रवीत् तत्तु मे पुरुषः कृष्णशवास्युत्तरत उपोदतिष्ठन्मम वा इदं मम वै वास्तुहमित्याददितेति; तं पिताऽब्रवीत् – तस्यैव पुत्रक तत्तु स तुभ्यमदास्यतीति; स पुनरेत्याब्रवीत्–तव ह वाव किल भगव इदमिति मे पिताऽऽहेति सोऽब्रवीत्–तदहं तुभ्यमेव ददामि य एव सत्यमवादीरिति।। इति।। ऐत.ब्रा. २२.६।

आचार्य सायण भाष्य– 'तं' नाभानेदिष्ठं 'स्वर्यन्तः' स्वर्गं प्राप्नुवन्तोऽङ्गिरसोऽब्रुवन्– हे 'ब्राह्मण' नाभानेदिष्ठ 'एतद्' गोसहस्रं यज्ञभूमाववशिष्टं 'ते' तुभ्यमदत्तमिति शेषः। अत्र शाखान्तरानुसारेण गोसहस्रमित्यर्थो लभ्यते। शाखान्तरे चैवमाम्नायते– 'ते सुवर्गं लोकं यन्तो य एषां पशव आसंस्तानस्मा अददुः' इति। 'तद्' गोसहस्रं 'समाकुर्वाणं' सम्यगात्मसात्कुर्वन्तम् 'एनं' नाभानेदिष्ठं कश्चित् पुरुषो यज्ञभूमेरुत्तरतः 'उपोत्थाय' समीप एवोत्थितो भूत्वेदमब्रवीत्– कीदृशः पुरुषा? 'कृष्णशवासी' अतिशयेन कृष्णं मलिनं वस्त्रं 'कृष्णशं' तद्वस्ते आच्छादयतीति कृष्णशवासी। अत्रायं मलिनवस्त्रः पुरुषः पशुस्वामी रुद्र इत्यवगन्तव्यम्। तथा च शाखान्तरे पठ्यते– 'तं पशुभिश्चरन्तं यज्ञवास्तौ रुद्र आगच्छत्' इति। स रुद्रः किमब्रवीदिति, तदभिधीयते– हे नाभानेदिष्ठ 'इदं' पशुसहस्रं ममैव स्वम्। तत्रेयमुपपत्तिः, 'वास्तुहं' वास्तौ यज्ञभूमौ हीनं कर्मान्ते परित्यक्तं वास्तुहं, तादृशं सर्वं ममैव स्वमिति सर्वत्र सम्प्रतिपन्नमिति। एवं पुरुषेणोक्तः स नाभानेदिष्ठः पुनरेनमब्रवीत्– हे रुद्रः मह्यमेवेदं सहस्रमङ्गिरसो दत्तवन्त इति। तं तथा वदन्तं नाभानेदिष्ठं पुनः पुरुषोऽब्रवीत्– हे नाभानेदिष्ठ, 'तद्वै' तस्मिन्नेव त्वदीयं मदीयमिति सन्देहे सति 'नौ' आवयोरुभयोरपि 'तवैव पितरि' मनौ निर्णयार्थं प्रश्नोऽस्त्विति। ततः 'सः' नाभानेदिष्ठः पितरं प्रष्टुम् 'ऐत्' आगतवान्। स पिता तेन पृष्टस्तमब्रवीत्– हे 'पुत्रक' बालक तुभ्यमङ्गिरसो महर्षयः 'अदुः' ननु दत्तवन्तः किम्? प्लुतिः प्रश्नार्था। एवं पित्रा पृष्टः स नाभानेदिष्ठः 'मे' मह्यम् 'अदुरेव' दत्तवन्त एवेत्यब्रवीत्। तर्हि कस्तव विचारः? इत्याशङ्किते स नाभानेदिष्ठ एवमुवाच– ते महर्षयो दत्तवन्त एव, किं तु तद्गोसहस्रं कश्चित्पुरूषो मलिनवस्त्रः सन्

यज्ञभूमेरुत्तरत उत्थाय, 'इदं' गोसहस्रं ममैव स्वं, यज्ञवास्तौ हीनत्वादित्यभिधाय 'आदिता' आदानं कृतवान्,अपहृतवानित्यर्थः। तथा ब्रुवन्तं पुत्रं प्रति पिता अब्रवीत्– हे 'पुत्रक' शिशो 'तद्' यज्ञवास्तौ हीनं गोसहस्रं तस्यै रुद्रस्य स्वं, पशुपतित्वात् यज्ञावशिष्टस्वामित्वाच्च; किन्तु तथा सत्यपि तव हानिर्नास्ति, 'सः' रुद्रः 'तद्' गोसहस्रं तुभ्यं दास्यतीति। यज्ञकाले तत्सर्वमङ्गिरसां धनं भवति, समाप्ते तु यज्ञे यदवशिष्टं, तस्य रुद्र एव स्वामीति नाङ्गिरसां दातुमधिकारोऽस्तीत्यभिप्रायः। तथा रुद्रवचनं शाखान्तर एवमाम्नायते– 'न वै तस्य तदीशत इत्यब्रवीद् यज्ञवास्तौ हीयते मम वै तत् इति। ततो दास्यतीति वचनं श्रुत्वा 'सः' नाभानेदिष्ठः पुनरपि रुद्रस्य समीपमेत्येदमब्रवीत्– हे 'भगवन्' पूज्य! रुद्र! 'तव ह वाव किल' तवैव सर्वम् 'इदं' स्वमिति मदीयः पिता आहेति। ततः 'सः' रुद्रोऽब्रवीत्– हे नाभानेदिष्ठ! 'तत्' सर्वं तुभ्यमेव ददामि, यस्त्वं सत्यमेवावादीः, न त्वनृतमुक्तवानसि, तस्मात् परितोषात् सत्यवादिने तुभ्यमेव ददामीति।।

डॉ. सुधाकर मालवीय (हिन्दी अनुवाद)– उस (नाभानेदिष्ठ) से स्वर्ग को जाने के लिए उद्युक्त हुए अङ्गिराओं ने कहा– हे ब्राह्मण! यह (यज्ञभूमि में अवशिष्ट गो–) सहस्र तुम्हारे लिए है। (गोसहस्र को) सम्यक् रूप से इकट्ठा करने वाले इस (नाभानेदिष्ठ) से अत्यन्त काला कपड़ा पहने हुए यज्ञभूमि के उत्तर की ओर समीप ही उठकर कोई पुरुष बोला– यह मेरा है, यज्ञभूमि में परित्यक्त वस्तु सभी मेरी है। तब उस (नाभानेदिष्ठ) ने कहा– 'यह मुझे उन (अंङ्गिराओं) ने दिया है।' उससे (पुनः पुरुष ने) कहा– हे नाभानेदिष्ठ, तब 'यह हम दोनों का है'– इस संदेह के निर्णयार्थ तुम्हारे पिता से प्रश्न किया जाय। वह पिता के पास आया। (पूछने पर) पिता ने कहा– हे बालक, तुम्हें क्या अङ्गिराओं ने नहीं दिया? (पिता के इस प्रकार पूछने पर उसने) 'मुझे दिया ही था'– इस प्रकार कहा। (तब क्या हुआ? ऐसा पूछने पर उसने कहा)– 'एक पुरुष काला वस्त्र पहने हुए उत्तर की ओर से समीप ही उठकर– 'यह मेरा है, यज्ञभूमि में परित्यक्त सभी वस्तु मेरी है'– ऐसा कहते हुए उसे ले लिया। उससे पिता ने कहा (पशुपति होने से) हे बालक वह (गो सहस्र) उन्हीं (रुद्र) का है। (फिर भी कोई हानि नहीं है) वह तुम्हें ही दे देंगे। वह पुनः रुद्र के समीप आकर बोला– 'हे भगवन् रुद्र! तुम्हारी ही सभी वस्तु है'– ऐसा मेरे पिता ने कहा है। तब उन (रुद्र) ने कहा– 'हे नाभानेदिष्ठ, उस सभी को मैं तुम्हें ही देता हूँ क्योंकि तुमने सत्य कहा है।

इसका मेरा वैज्ञानिक भाष्य– जब नाभानेदिष्ठ प्राण (ऋषि) ने उपर्युक्त दोनों सूक्ष्मरूप प्राण समूहों को उत्पन्न किया तब नाभानेदिष्ठ प्राण स्वयं का क्या हुआ? यह रहस्य यहां समझाया है। अङ्गिरा नामक प्राणों तथा ज्वालायुक्त ऊष्मा व विकिरणों से उस नाभानेदिष्ठ प्राण को विभिन्न बलों से युक्त अनेक दिशाओं में जो यज्ञ चल रहा था, से क्या मिला अर्थात् उसका क्या हुआ?

षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण की सक्रियता व प्रधानता में जब नाभिकीय संलयन की क्रिया हो रही थी, उस समय जो नाभानेदिष्ठ प्राण केन्द्रीय भाग की ओर अपना सहयोग प्रभाव देते हुए जा रहा था। उस समय गति करते हुए उस प्राण ने उन वैद्युत परमाणुओं को एकत्र करना वा आकर्षित करना प्रारम्भ किया। उस समय उत्तर दिशा में स्थित एक कृष्णशवासी अर्थात् ऐसे विकिरण जो ज्योतिर्युक्त थे साथ ही आकर्षणशक्ति वाले थे अथवा कृष्णशवासी ऐसे परमाणु थे जो अप्रकाशित पार्थिव तत्वों के भाग थे परन्तु आकर्षण बलों से विविध प्रकार से युक्त थे, ऐसे परमाणु समूहों ने नाभानेदिष्ठ प्राणों के द्वारा आकर्षित किये जाते हुए उन वैद्युत परमाणुओं को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। यह 'उन' वैद्युत परमाणुओं से तात्पर्य है कि ऐसे परमाणु (आयन) जो नाभिकीय संलयन की क्रिया से बहिर्गत हो जाते हैं अर्थात् उनके संलयन योग्य उस समय पर्याप्त ताप व दाब नहीं होता। ऐसे आयनों को ही नाभानेदिष्ठ प्राण के आकर्षण के प्रभाव से पृथक् करके उस उपर्युक्त कृष्णशवासी प्राणों ने अपनी ओर आकृष्ट किया था। यहां 'कृष्णशवासी' पद का अर्थ आचार्य सायण ने 'काले मलिन वस्त्रधारी रुद्र' किया है। वस्तुतः कृष्णशवासी का वही अर्थ सुसंगत है, जो हमने ऊपर किया है। हाँ, रुद्र शब्द कृष्णशवासी का विशेष्य है। वहाँ रुद्र भी एक शक्तिशाली मेदक क्षमता सम्पन्न प्राण को ही कहते हैं। साथ ही प्राणापानव्यानादि दश प्राण भी रुद्र कहलाते हैं। उधर तै.सं. में रुद्रों की तुलना त्रिष्टुप् प्राणों से की है और मै.सं. में 'एष रुद्रो देवानां क्रूरतमः' कहा है। इससे प्रकट होता है कि रुद्र ऐसे अति शक्तिशाली प्राण होते हैं जो त्रिष्टुप् की भाँति आकर्षणादि क्षमता से सम्पन्न होते हैं। यह रुद्र 'पशुपति' भी कहाता है अर्थात् यह अनेक मरुतों का पालक, रक्षक व स्वामी होता है। तब इस रुद्र प्राण एवं नाभानेदिष्ठ प्राण के मध्य वे अप्रकाशित एवं नाभिकीय संलयन क्रिया से पृथक् हुए अर्थात् उस प्रक्रिया से बहिर्गत परमाणु मानो दोलायमान होने लगे। ऐसी स्थिति में मनस्तत्व सभी प्राणों का आधार व कारण प्राण होता है, के प्रेरण सम्पर्क से वे परमाणु रुद्रसंज्ञक क्रूरतम प्राणों के अधिकार में आ गये। उसके पश्चात् उन रुद्रसंज्ञक प्राणों के प्रभाव से पुनः वे परमाणु मुक्त होकर नाभानेदिष्ठ प्राणों के आकर्षण में आ गये। यह कैसे हुआ? इसका उत्तर यह कि यहां नाभानेदिष्ठ प्राण को सत्यवादी कहा है (वदति गतिकर्मा) इससे संकेत मिलता है कि जब वे परमाणु रुद्रसंज्ञक प्राणों के आकर्षण में चले गये वा जाने लगे तब नाभानेदिष्ठ प्राण अपने कारण रूप मनः प्राण जो यहां सत्यस्वरूप अर्थात् अव्यक्त वा अविनाशी कहा अथवा यहां सत्य से तात्पर्य मूल प्रकृति मान लें,

और गतिशील हुआ। सम्भवतः मूल प्रकृति की ओर गमन मानना युक्ति संगत न हो। तब हम सत्य का अर्थ मन वा ब्रह्म (विद्युत्) ग्रहण कर सकते हैं। यद्यपि मनस्तत्व की प्रेरणा से ही वे परमाणु रुद्रसंज्ञक प्राणों की ओर आकृष्ट हुए थे परन्तु जब नाभानेदिष्ठ प्राण ने उस मनस्तत्व व विद्युत् अग्नि की ओर जाकर अर्थात् उनसे संयुक्त होकर ऐसी क्षमता प्रदान कर ली जिससे वह उन परमाणुओं उस शक्तिशाली रुद्रसंज्ञक प्राणों के बंधन से मुक्त कर अपने साथ संयुक्त करने में समर्थ हुआ।

(ख) अस्पष्ट एवं यज्ञपरक प्रतीत होने वाला प्रसंग

आदित्याश्च ह वा अङ्गिरसश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्धन्त,— वयं पूर्व एष्यामो वयमिति; ते हाङ्गिरसः पूर्वे श्वः सुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य ददृशुस्तेऽग्निं प्रजिध्युरङ्गिरसां वा एकोऽग्निः परेह्यादितेभ्यः श्वः सुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य प्रब्रूहीति; ते हाऽऽदित्या अग्निमेव दृष्ट्वा सद्यः सुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य ददृशुस्तानेत्याब्रवीच्छ्वः सुत्यां वः स्वर्गस्य लोकस्य प्रब्रूम इति; ते होचुरथ वयं तुभ्यं सद्यः सुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य प्रब्रूमस्त्वयैव वयं होत्रा स्वर्गं लोकमेष्याम इति; स तथेत्युक्त्वा प्रत्युक्तः पुनराजगाम।।इति।। ऐत.ब्रा. ३०.८।

आचार्य सायण भाष्य— अदितेः पुत्रा 'आदित्याः' देवाः, 'अङ्गिरसः' महर्षयः। ते द्विविधाः स्वर्गे लोके सति परस्परमस्पर्धन्त। तत्राऽऽदित्या एवमुक्तवन्तः— वयमेव 'पूर्वे' प्रथमं प्रवृत्ताः सोमयागमनुष्ठाय स्वर्गमेष्याम इति। तथाऽङ्गिरसोऽपि वयमेव 'पूर्वे' प्रथमं प्रवृत्ताः स्वर्गं गमिष्याम इत्यवोचन्। तदानीं 'ते' अङ्गिरसो महर्षयः 'पूर्वे' प्रथमं प्रवृत्ताः सन्तः स्वर्गस्य लोकस्य निमित्तभूतां 'सुत्यां' सोमाभिषवं 'श्वो ददृशुः' परेद्युः करिष्याम इति निश्चितवन्तः। निश्चित्य च 'ते' अङ्गिरस आदित्यानां समीपे स्वकीयमग्निं 'प्रजिघ्युः' प्रहितवन्त इत्यर्थः। अङ्गिरसामेव महर्षीणां मध्येऽग्निनामको महर्षिरेकोऽस्ति, तं प्रत्येवमुक्तवन्तः। हे अग्ने! त्वं 'परेहि' परागच्छ। आदित्यानां समीपे गत्वा 'श्वः सुत्यां' परेद्युरस्माभिः करिष्यमाणं सोमयागं, स्वर्गस्य लोकस्य निमित्तभूतम्, आदित्येभ्यः प्रब्रूहि। हे आदित्याः! परेद्युरङ्गिरसः सुत्यां करिष्यन्ति। यूयमागत्याऽऽर्त्विज्यं कुरुतेति कथयेत्यर्थः। 'ते' त्वादित्या दूरादागच्छन्तमग्निं दृष्ट्वैव तदभिप्रायमवगत्य भविष्यतस्तदीययज्ञात् पूर्वमेव स्वर्गस्य लोकस्य साधनभूतां 'सद्यः सुत्याम्' अद्यतनसोमयागं कर्मविशेषं 'ददृशुः' निश्चितवन्तः। तदानीमग्निः 'तान्' आदित्यान् 'एत्य' प्राप्येदं वचनमब्रवीत्,— हे आदित्याः स्वर्गस्य लोकस्य साधनभूतां श्वः सुत्यामङ्गिरोभिः करिष्यमाणां 'वः' युष्मभ्यं 'प्रब्रूमः' अहं प्रब्रवीमि— यूयमागत्याऽऽर्त्विज्यं कुरुतेति। ततः 'ते' आदित्या अग्निमूचुः। 'अथ' त्वद्वचनश्रवणानन्तरं वयं तुभ्यं ब्रूमः— स्वर्गस्य लोकस्य साधनभूता सुत्याऽस्माभिः सद्यः क्रियते। तस्मादिदानीमागतेन त्वयैव 'होत्रा' आर्त्विज्यं कुर्वता सह वयं प्रथमतः स्वर्गलोकमेष्याम इति। सोऽग्निस्तथेत्युक्त्वा 'प्रत्युक्तः' तैरादित्यैरूक्तं प्रतिवचनं प्राप्तः; स्वकीयानामङ्गिरसां समीपमाजगाम।।

डॉ. सुधाकर मालवीय (हिन्दी अनुवाद)— (अदिति के पुत्र) आदित्य देवों और महर्षि अङ्गिरसों के मध्य स्वर्गलोक में परस्पर स्पर्धा हो गई कि 'हम पहले (सोमयाग का अनुष्ठान करके स्वर्ग) जायेंगे, हम.......।' तब उन अङ्गिरसों ने प्रथमतः प्रवृत्त होकर स्वर्ग लोक के निमित्तभूत सोमाभिषव को कल करेंगे— ऐसा निश्चय किया। फिर उन अङ्गिरसों ने (आदित्यों के समीप अपनी) अग्नि प्रज्वलित की। अङ्गिरसों के मध्य एक अग्नि नामक महर्षि है। उनसे अङ्गिरसों ने कहा— 'हे अग्नि? तुम वहां जाओ और आदित्यों के समीप जाकर कल हम लोगों के द्वारा स्वर्गलोक के निमित्तभूत किए जाने वाले सोमयाग को कहो (कि हे आदित्यो! कल अङ्गिरस सोमाभिषव करेंगे। आप लोग आकर ऋत्विज कर्म करें)। उन आदित्यों ने (दूर से ही आते हुए) अग्नि को देखते ही (उनके अभिप्राय को जानकर कल होने वाले उनके यज्ञ से पूर्व में ही) स्वर्गलोक के साधनभूत सद्यः सोमयाग को (उसी समय) करने का निश्चय किया। तब उन (आदित्यों) के पास आकर अग्नि ने कहा— हे आदित्यो, अङ्गिराओं द्वारा कल अनुष्ठित होने वाले स्वर्ग लोक के साधनभूत सोमाभिषव को मैं आप से कहता हूँ (कि आप आकर उसमें ऋत्विज कर्म करें)। उन (आदित्यों) ने कहा— अब स्वर्गलोक के साधनभूत हमारे द्वारा आज ही किए जाने वाले सोमयाग को हमलोग तुमसे कहते हैं। (इसलिए यहाँ आये हुए) आपके ही साथ ऋत्विजकर्म करते हुए हम लोग (पहले) स्वर्ग लोक जायेंगे। वह अग्नि 'वैसा ही हो'— इस प्रकार कहकर (आदित्यों से) प्रत्युत्तर प्राप्त करके पुनः (अङ्गिरसों के मध्य) आए।

इसका मेरा वैज्ञानिक भाष्य— यहां तारों के बनने के प्रारम्भ की प्रक्रिया व घटना का उल्लेख करते हुए महर्षि कहते हैं कि विविध परमाणुओं से तारे के आकार का अर्थात् अपना निकटस्थ तारा सूर्य का निर्माण हो ही रहा था अर्थात् पिण्डाकृति का निर्माण पूर्व में अनेकत्र आये प्रकरणों के अनुसार हो रहा था वर्तमान भाषा में गुरूत्वाकर्षण बल के कारण गोले का निर्माण हो रहा था। उस समय भी उस गोले में ऊष्णता थी। बाहरी भाग में ज्वालायें उठ रही थी। उसके

केन्द्रीय भाग में आदित्य अर्थात् कारण प्राण तत्व, विविध तीव्र बलोत्पादक छन्दों, मास संज्ञक रश्मियों व सूत्रात्मा वायु की प्रधानता थी, जो सभी प्राणों को परस्पर दृढ़ता से बाँधे हुए था। जबकि उस गोले के बहिर्भाग में अंगारों के समान जलती ज्वालायें उठ रही थीं। उनके अन्दर व्यापक विद्युत् की विभिन्न धाराएं भी प्रवाहित हो रही थीं। ये दोनों ही भाग परस्पर मध्य भागस्थ सोम तत्व को अपनी ओर आकर्षित करके उससे विभिन्न पदार्थाणुओं के निर्माण का प्रयत्न करने लगे अर्थात् उन परमाणुओं को संलयित करके नवीन तत्वों के निर्माण का प्रयास करने लगे। उस प्रक्रिया में आंगिरस प्राणों जो बहिर्भाग में ज्वालों के रूप में थे अथवा उनके अन्दर प्रवाहित हो रहे थे, की प्रेरणा से उनके ही मध्य में स्थित व्यापक विद्युत् तरंगों (अग्नि नामक महर्षि) का प्रवाह केन्द्रीय भागस्थ आदित्य संज्ञक उपर्युक्त प्राणों की ओर चल पड़ा और उन्हें आकृष्ट करके बहिर्भाग की ओर लाने का प्रयास करने लगा। परन्तु उन बलवान् आदित्य प्राणों ने उस विद्युत् को मास संज्ञक प्राणों के समुदाय रूप ऋतु प्राणों जो ऊष्माशोषी होते हैं, से घेरकर व उन जैसा ही बना करके बहिर्भाग की ओर भेजा। इस समय वे विद्युद् रश्मियां ऋतु प्राणों से आवेष्टित थीं जो ऊष्मा के अवशोषण में विशेष समर्थ थीं। यहां दर्शाया गया सम्वाद एक शैली मात्र का प्रदर्शन है।

(ग) क्रूर पशुबलि, मांसभक्षण एवं हिंसा प्रतीत होने वाला प्रसंग

हनू सजिह्वे प्रस्तोतुः, श्येनं वक्ष उद्गातुः, कण्ठः काकुद्रः प्रतिहर्तुर्दक्षिणा श्रोणिर्होतु, सव्या ब्रह्मणो, दक्षिणं सक्थि मैत्रावरुणस्य सव्यं ब्राह्मणाच्छंसिनो, दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्योः, सव्यमुपगातृणां, सव्योंऽसः प्रतिस्थातुर्, दक्षिणं दोर्नेष्टुः, सव्यं पोतुर्, दक्षिण ऊरुरच्छावाकस्य, सव्य आग्नीध्रस्य, दक्षिणो बाहुरात्रेयस्य, सव्यः सदस्यस्य, सदं चानूकं च गृहपतेर्, दक्षिणौ पादौ गृहपतेर्व्रतप्रदस्य, सव्यौ पादौ गृहपतेर्भार्यायै व्रतप्रदस्यौष्ठ एनयोः साधारणो भवति, तं गृहपतिरेवं प्रशिंष्याज्जाघनीं पत्नीभ्यो हरन्ति, तां ब्राह्मणाय दद्युः, स्कन्ध्याश्च मणिकास्तिस्रश्च कीकसा ग्रावस्तुतस्, तिस्रश्चैव, कीकसा अर्धं च वैकर्तस्योन्नेतुरर्धं चैव वैकर्तस्य, क्लोमा च शमितुस्तद्ब्राह्मणाय दद्याद् यद्यब्राह्मणः स्याच्छिरः सुब्रह्मण्यायै, यः श्वःसुत्यां प्राह तस्याजिनमिळा सर्वेषां होतुर्वा,।।इति।। ऐत.ब्रा. ३१.१।

आचार्य सायण भाष्य– जिह्वया सहितं हनुद्वयं प्रस्तोतुर्भागः। श्येनाकारं वक्ष उद्गातुर्भागः। यः कण्ठः, यश्च 'काकुद्रः' काकुदम्, तदुभयं प्रतिहर्तुर्भागः। श्रोणिरूरुमूलम्, तदुभयं दक्षिणसव्यरूपं क्रमेण होतुर्ब्रह्मणोर्भागः। ऊर्वधोभागः 'सक्थि' तच्चोभयं क्रमेण मैत्रावरुणब्रह्मिणाच्छंसिनोर्विभागः। दक्षिणांसेन युक्तं दक्षिणं पार्श्वमध्वर्योर्भागः। सव्यं पार्श्वमात्रमुपगातृणां भागः। सव्योंऽसः प्रतिप्रस्थातुर्भागः। 'दोः' बाहुः, तच्चोभयं क्रमेण नेष्टृपोत्रोर्भागः। ऊरुद्वयं क्रमेणाच्छावाकाग्नीध्रयोर्भागः। सक्थिशब्देन अधोभागस्याभिहितत्वात् ऊर्ध्वभाग ऊरुशब्देन विवक्षितः। बाहुद्वयं क्रमेण आत्रेयसदस्ययोर्भागः। दोर्बाहुशब्दयोरर्थैक्येऽप्यधोभागोर्ध्वभागाभ्यां भेदो द्रष्टव्यः। संदानूकशब्दौ पूर्वाचार्यैर्व्याख्यातौ–

"अनूकं मूत्रबस्तिः स्यात्, सास्नेत्येके वदन्ति च।
सदं तु पृष्ठवंशः स्यादेतद्गृहपतेर्द्वयम्"।। इति।

यः पुमान् गृहपतेर्व्रतप्रदा भोजनदायी, तस्य दक्षिणौ पादौ भागः। गृहपतेर्या भार्या, तस्यै च व्रतप्रदो यः पुमांस्तस्यैव सव्यौ पादौ भागः। अत्र पुरोवर्तिनोः पादयोर्बाहुत्वेनाभिहितत्वात्, पश्चात्यावेव पादशब्देन विवक्षितौ। तत्रैकस्मिन्नपि दक्षिणे पादे द्विवचनमवयवापेक्षम्। एवमुतरत्रापि। योऽयमोष्ठः, सोयम् 'एनयोः' व्रतपदयोः 'साधारणः' भागो भवति। 'तं' भागं गृहपतिरेव 'प्रशिंष्यात्' तवायं तवायमिति विभज्य प्रदद्यात्। 'जाघनीं' पुच्छं तां पत्नीभ्यो 'हरन्ति' दद्युः। ताश्च पत्न्यः 'तां' जाघनीं ब्राह्मणाय कस्मैचिद्दद्युः। स्कन्धे भवाः 'स्कन्ध्याः' मणिसदृशा मांसखण्डा 'मणिकाः' एकस्मिन् पार्श्वे स्थिता मांसशकलास्तिस्रः 'कीकसाः' मणिकाः कीकसाश्चेत्युभयं ग्रावस्तुतो भागः। इतरपार्श्वे स्थितास्तिस्रः कीकसाः, 'वैकर्तः' प्रौढो मांसखण्डः, तस्यार्धं पूर्वोक्तकीकसात्रयं चोन्नेतुर्भागः। यत्तु वैकर्तस्येतरदर्धं, यश्च हृदयपार्श्ववर्ती क्लोमशब्दाभिधो मांसखण्डस्तदुभयं शमितुर्भागः। अयं शमिता यदि–अब्राह्मणः स्यात्, तदा स्वेन स्वीकृतं तदुभयमन्यस्मै ब्राह्मणाय दद्यात्। यच्छिरोऽस्ति, 'तत्सुब्रह्मण्यायै' सुब्रह्मण्याभिधानर्त्विजे दद्यात्। श्वःसुत्येति निगदनाम तां चाऽऽग्नीध्रो ब्रूते। तथा च आश्वलायन आह– 'आग्नीध्रः श्वःसुत्यां प्राह' इति। 'अजिनं' चर्मं, तस्याऽऽग्नीध्रस्य भागः। 'इळा' सवनीयपशोः सम्बन्धी योऽयमिळाभागः, स सर्वेषां साधारणः। यद्वा, होतुरसाधारणः।।

डॉ. सुधाकर मालवीय (हिन्दी अनुवाद)– जीभ सहित (पशु के) दोनों जबड़े प्रस्तोता का भाग है, श्येन पक्षी के समान वक्ष उद्गाता का, कण्ठ एवं काकुद (कौआ आदि गले का तालु) प्रतिहर्ता का, दाहिनी कमर होता का, बायीं (कमर) ब्रह्मा का, दाहिनी पिण्डली (पैर का निचला भाग) मैत्रावरुण का, बायीं पिण्डली ब्राह्मणाच्छंसी का, कंधे के साथ दाहिनी बगल अध्वर्यु का, बायां (बगल मात्र) उपगाता (जो सामगान करने वालों के साथ गान करते हैं उन) का, बायां कन्धा

प्रतिप्रस्थाता का, दाहिने नीचे का आगे का बाहु, (पैर का खुर भाग) नेष्टा का, बायां पोता का, दाहिना ऊरु (जांघ अर्थात् पैर का ऊपरी भाग) अच्छावाक का, बायां आग्नीध्र का, दाहिना बाहु (पैर का ऊपरी भाग) (अत्रि गोत्रज) आत्रेय का (यहां यह द्रष्टव्य है कि आत्रेय कोई ऋत्विज नहीं है। फिर भी यह कात्यायन श्रौतसूत्र १०.२.२१ और कठ संहिता २८.४ में आते हैं। वस्तुतः इनका कार्य शाङ्खायनश्रौतसूत्र १६.१८,१६ में देखना चाहिए।), बायां सदस्य का, रीढ़ और आसन का भाग गृहपति का, दाहिने दोनों पैर भोजन देने वाले गृहपति (महराज) का, बायें दोनों पैर भोजन देने वाले गृहपति (महराज) की स्त्री का, दोनों ओष्ठ इन दोनों का सामान्य रूप से है, उसे गृहपति ही बाटेंगे, पुच्छ भाग को पत्नियों के लिए ले जाते हैं, किन्तु उसे ब्राह्मण को ही दे देना चाहिए। (स्कन्ध पर होने वाले मणि के आकार का मांस पिण्ड) डील, गर्दन के एक बगल में स्थित मांस खण्ड और तीन कीकस अर्थात् पसलियां ग्रावस्तुत का, दूसरे पार्श्व में स्थित तीन पसलियां और गर्दन के प्रौढ़मांस–खण्ड का आधा उन्नेता का, गर्दन के प्रौढ़मांस–खण्ड का दूसरा आधा भाग और क्लोम अर्थात् हृदय के पास में स्थित मांस खण्ड (फेफड़ा) शमिता (पशु का आलम्भन करने वाले) का, किन्तु वह (शमिता) यदि ब्राह्मण न हो तो अपने से स्वीकृत दोनों को अन्य ब्राह्मण को दे देना चाहिए। शिर सुब्रह्मण्य को देना चाहिए और जो 'श्वः सुत्याम्' दूसरे दिन के अभिषव को कहता है उस (अध्वर्यु) को चमड़ा देना चाहिए। सवनीय पशु का जो इळाभाग (यज्ञीय हविः) है वह सामान्य रूप से सभी का है अथवा होता का है।

इसका मेरा वैज्ञानिक भाष्य– ज्वालाओं के समान वर्तमान भेदक शक्ति सम्पन्न एवं सबको अपने के समटने की क्षमता सम्पन्न हनु संज्ञक भाग प्रस्तोता अर्थात् अपान संज्ञक प्राण का भाग होता है, जो अग्नितत्व से पूर्ण होता है। अतिशीघ्र गन्ता बलिष्ठ ऊपर की ओर चमकता हुआ समस्त गायत्र प्रधान ऊर्जा को ढोता हुआ उद्गाता अर्थात् मुख्य प्राणों, मन, वाक्, प्राणापान विभिन्न रश्मियों को बांधने वाला पंक्ति छन्द व त्रिष्टुप् उष्णिक् छन्दों से युक्त विभिन्न रश्मियों के निवास स्थान का भाग होता है। यह ऊपर की ज्वालाओं से नीचे का भाग होता है। इन दोनों भागों के मध्य का स्थान वाक्तत्व का भण्डार जिसमें उच्च ध्वनि उत्पन्न होती रहती हैं, यह भाग प्रतिहर्ता व्यानतत्वप्रधान अग्नि पदार्थ को आगे पीछे धकेलने वाला तथा विभिन्न छन्दों व मरुतों से युक्त होता है। दक्षिण श्रोणि भाग अर्थात् केन्द्रीय भाग जो पृथक् घूर्णन करता है उसका दक्षिण भाग जिसमें जगती छन्द की प्रधानता होती है, होता अर्थात् तीव्र अग्नि, वायु व मनस्तत्व की प्रधानता का भाग होता है। उस केन्द्रीय भाग का उत्तरी भाग विद्युत् व सूत्रात्मा की प्रधानता वाला भाग होता है। उसी का दक्षिण दिशा वाला सक्थ अर्थात् जो ऊपरी भाग से जुड़ा घूमता है अर्थात् जो संधि भाग जो दोनों (केन्द्रीय व बाहरी) भागों को सटाये रखता है व मैत्रावरूण प्राणोदान के साथ संगत गायत्री छन्द युक्त होता है, का भाग होता है तथा उसी प्रकार उत्तरी सक्थ अर्थात् सटा हुआ संधि भाग ब्राह्मणाच्छंसी अर्थात् विविध आकृतियों रूपों को बनाने में समर्थ इन्द्रतत्व प्रधानता का भाग होता है। तारों के दक्षिण भाग में स्थित प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणु समूह एवं अनेक बलों का आधार जिससे वह पदार्थ चलायमान होता हुआ शब्द करता रहता है, अध्वर्यु अर्थात् प्राणापान प्रधान विभिन्न वायुओं का भाग होता है एवं उसका उत्तर भाग उपगाता अर्थात् प्राणापान, मन, वाक् व उपर्युक्त चक्षु–श्रोत्र (अर्थात् विभिन्न त्रिष्टुप् प्राणों से युक्तप्रकाशक विकिरणों तथा विभिन्न तन्मात्राओं को जोड़ने वाले आकाशतत्व मिश्रित पंक्ति छन्द आदि से) युक्त होता है। उत्तर दिशा के बल का आधार प्रतिप्रस्थाता प्राणापान प्रधान विभिन्न वायुओं का भाग होता है। यह भाग अधिक बलशाली व हिंसक गतिविधियों से युक्त होता है। दक्षिण दिशा में स्थित विभिन्न उत्पन्न तत्वाणुओं का बल शोधक विद्युत् अग्नि का भाग होता है तथा उत्तरी भागस्थ उत्पन्न तत्वाणुओं का बल भी पवित्रकर्ता ऊष्मा अग्नियुक्त होता है। यह अधिक गतिशील भी होता है। (पवते गतिकर्मा) दक्षिण दिशस्थ ऊरु अर्थात् बहुशक्ति सम्पन्न व्यापक आच्छादक तत्व अच्छावाक अर्थात् बाहु के समान प्रक्षेपक बलों से युक्त होते हैं तथा उत्तर दिशस्थ ऐसे ही आच्छादक व्यापक तत्व आग्नीध्र अर्थात् अग्नि के विशेष अधिकरण व आकाशतत्व से अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न होते हैं। दक्षिण दिशस्थबाहु अर्थात् विभिन्न प्रकार के बल वा बल सम्पन्न पदार्थ आत्रेय अर्थात् सतत तीव्र गन्ता होते हैं, जो विभिन्न परमाणुओं का भक्षण करते रहते हैं तथा उत्तर दिशस्थ इसी प्रकार के पदार्थ सदस्य अर्थात् वैद्युत प्रधान प्रकाशित–अप्रकाशित परमाणुओं व ऋतु संज्ञक प्राणों से विशेष युक्त होते हैं। बृहती छन्द, विद्युत् व सूत्रात्मा वायु मिश्रित विभिन्न सदः अर्थात् स्थान गृहपति अर्थात् विभिन्न ऋतु संज्ञक प्राणों तथा उनके आधाररूप मार्गों वा स्थानों के रक्षक वायु मिश्रित अग्नि तत्व का भाग होते हैं। दक्षिण दिशस्थ प्रकाश्य पदार्थ भाग का आधार भी ऐसे ही वायु मिश्रित अग्नितत्व जो विभिन्न क्रियाओं के रक्षक होते हैं, का भाग होता है। उत्तर दिशा में प्रकाश्य भाग का आधार उपर्युक्त वायु मिश्रित अग्नि की भरणीया विभिन्न शक्तियों का भाग होता है। विभिन्न कर्मों के प्रदाता वायुओं को जलाने वाले पदार्थ दोनों (उत्तरी व दक्षिण भाग) ओर सामान्यतः व्याप्त होते हैं अर्थात् सबमें लगभग समान–2 ज्वलनशीलता होती है। ऊष्मा ऊर्जा का यह समान वितरण वे गृहपति अर्थात् विद्युत् मिश्रित विभिन्न वायु ही करते हैं। वे ऐसे वायु तत्व

ऐसा वितरण करके सूर्य की रक्षिका क्रियाओं को प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त कराते हैं। इसके कारण सूर्यादि में विभिन्न ऊर्जा–ऊष्मा संचरणादि क्रियाओं की रक्षा होती रहती है। इस काम में ब्राह्मण अर्थात् विद्युत् की भूमिका अनिवार्य होती है। बिना इसके ऊर्जा का संचरण सम्भव नहीं हो सकता। सूर्यादि के अन्दर विभिन्न गति व अवशोषण की क्रियाओं में ध्वनि होती हुई तीन प्रकार की अर्थात् प्राणोदानव्यान से उत्पन्न कीकसा नियन्त्रण होता हुआ ग्रावस्तुत अर्थात् विभिन्न रश्मियों, मरुतों से युक्त गर्जनयुक्त मेघ उत्पन्न होते हैं अर्थात् इन ऊर्जा संचरण में गम्भीर घोष होते हुए तीन प्राणों से नियंत्रित क्रियाएं चलती रहती हैं और इसी प्रकार इन तीन प्राणों से नियंत्रित होते हुए विभिन्न कूप अर्थात् मार्गों (गुफा जैसे) को बढ़ाते हुए उत्कृष्टता से प्राप्त कराने में समर्थ होते हैं। एवं वरुण अर्थात् विभिन्न आवरक प्राण वा अपान तत्व एवं इन बढ़ते हुए मार्गों के द्वारा यज्ञ अर्थात् संयोग वियोग की प्रक्रिया को बढ़ाते हैं। ऐसा करने के लिए भी विद्युत् की भूमिका विशेष होती है। जब विद्युत् आवेश का अभाव व न्यूनता होती है, तब विभिन्न छन्द प्राणों का मूल गायत्री प्राण जो विभिन्न बल व तेज की उत्पत्ति में अति श्रेष्ठ होता है उसका सुब्रह्मण्य अर्थात् सूत्रात्मा वायु का योग होता है। इस क्रिया से विद्युदग्नि की समृद्धि वा उत्पत्ति होती है। जो विस्तृत क्षेत्र में उत्पादन की क्रियाओं को समृद्ध वा प्रकाशित करते हैं, ऐसे साम (भेदक शक्तिसम्पन्न छन्द) अजिन अर्थात् अजेय होते हैं अर्थात् वे नियंत्रण में आने के अयोग्य होते हैं। वे सम्पूर्ण पदार्थ में हलचल या क्षोभ उत्पन्न करते रहते हैं। इडा अर्थात् वाक् तत्व विभिन्न संयोज्य अणु, मरुत्, छन्द, उत्पन्न कोई भी परमाणु व विस्तृत आकाश तत्व समस्त होता के रूप में होते हैं अर्थात् सभी में आदान–प्रदान की विस्तृत प्रक्रिया सतत चलती रहती है।

(घ) प्रख्यात शुनःशेप इतिहास प्रतीत होने वाला प्रसंग

तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः, शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलाङ्गूल इति; तं होवाच, ऋषेऽहं ते शतं ददाम्यहमेषामेकेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणा इति; स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान उवाच, नन्विममिति; नो एवेममिति कनिष्ठं माता; तौ ह मध्यमे संपादयांचक्रतुः शुनःशेपे, तस्य ह शतं दत्वा स तमादाय सोऽरण्याद् ग्राममेयाय।। इति। ऐत.ब्रा. ३३.३।

आचार्य सायण भाष्य– 'तस्य' अजीगर्तस्य शुनःपुच्छादिनामकास्त्रयः पुत्रा आसु। 'तं' पुत्रवन्तमृषिं रोहितः उवाच– हे ऋषे, 'ते' तुभ्यमहं गवां शतं ददामि। (दत्वा चाहमेषां पुत्राणां मध्य एकेन केनचित्पुत्रेणाऽऽत्मानं मद्देहं वरुणान्निष्क्रीणै मूल्यं दत्वाऽऽत्मानं मोचयामीति। एवमुक्तः सोऽजीगर्तो 'ज्येष्ठपुत्रं' शुनःपुच्छनामकं हस्तेन 'निगृह्णानः' स्वसमीपे समाकर्षन् रोहितं प्रत्येवमुवाच– तुभ्यमेकः पुत्रो दीयते, 'इमं नु 'शुनःपुच्छं तु 'न' ददामि, मम प्रियत्वादीति। ततो माता कनिष्ठं हस्तेनं गृहीत्वैवमुवाच– 'इमं' शुनोलाङ्गूलं तु मम प्रियं 'नो एव' सर्वथा न ददामीति। ततः तौ उभौ मातापितरौ 'मध्यमे' पुत्रे शुनःशेपे दानं 'संपादयांचक्रतुः' अङ्गीकृतवन्तौ। ततः तस्य अजीगर्तस्य 'सः' रोहितो गवां शतं दत्वा 'तं' शुनःशेपम् आदायावस्थिता। ततः 'सः' रोहितः तेन शुनःशेपेन सहारण्यात् स्वकीयं ग्रामं प्रत्याजगाम।

डॉ. सुधाकर मालवीय (हिन्दी अनुवाद)– उनके तीन लड़के थे– शुनःपुच्छ, शुनःशेप और शुनोलाङ्गूल। उसने उन (ऋषि) से कहा– हे ऋषि! मैं तुमको सौ (गाएँ) दूँगा। इन पुत्रों में से किसी एक पुत्र के द्वारा निष्क्रय कर मैं अपने को (वरुण) से छुड़ाउँगा। उसने ज्येष्ठ पुत्र (शुनःपुच्छ) को हाथ से अपने पास करते हुए (रोहित से) कहा– (तुम्हें एक पुत्र देना है, किन्तु मेरा प्रिय होने से) इस (ज्येष्ठ पुत्र) को तो न लो। इसी प्रकार माता ने छोटे पुत्र के हाथ को पकड़कर कहा– इसे मैं नहीं ही दूँगी। (क्योंकि यह मेरा प्रिय है) इसके बाद वे दोनों (माता–पिता) मध्यपुत्र शुनःशेप को देने के लिए राजी हो गये। तब उन (अजीगर्त) को सौ (गाएँ) देकर वह (रोहित) उस (शुनःशेप) को लेकर उन शुनःशेप के साथ अरण्य से ग्राम को आए।

इसका मेरा वैज्ञानिक भाष्य– उस अजीगर्त अर्थात् वह प्राण जो मास नामक रश्मियों, जो मिश्रण–अमिश्रण का विशेष सामर्थ्य लिए ऊष्मायुक्त होती हैं, से उत्पन्न प्राण विशेष के तीन पुत्ररूप प्राण थे जो उससे उत्पन्न हुए थे। उसका अतिशय श्रेष्ठ पालक प्राण शुनः पुच्छ था। शुनः पुच्छ का तात्पर्य है– ऐसा समृद्ध वायु जो ऊष्मा की उत्पत्ति स्थल शरद् नामक ऋतु संज्ञक प्राण का रूप होता है अथवा उससे संयुक्त हुआ होता है। मध्यम पुत्र प्राण शुनःशेपः का तात्पर्य है कि ऐसा समृद्ध वायु जो प्रजनन–उत्पादन क्षमता से विशेष समर्थ होता तथा अपना तेज किसी अन्य परमाणु आदि पदार्थ में प्रक्षिप्त करके शान्त हो जाता है अर्थात् सो सा जाता है। कनिष्ठ पुत्र प्राण अर्थात् अल्पसामर्थ्य वाला अन्तिम तृतीय पुत्र प्राण था शुनः लाङ्गूल। शुनः लाङ्गूल का तात्पर्य है कि ऐसा वायु जो दोलायमान होता हुआ गति करता रहता है। यह किसी अन्य के पीछे चिपक कर पिछड़ता हुआ उसका अनुसरण करता रहता है। इन तीनों पुत्र प्राणों को रोहित छन्दों ने आकर्षित करने का प्रयास किया तथा इसके बदले अजीगर्त ऋषि प्राण जो परतन्त्र था को संगतिकरण

सामर्थ्य के सूक्ष्म अवयव प्रदान किये अर्थात् बाधक आवरण को कुछ सीमा तक दूर करने का प्रयास किया और दूर भी किया। अब ऐसे कुछ स्वतन्त्र अजीगर्त ऋषि प्राण ने उपर्युक्त शुनः प्राण को अपने बन्धन में ले लिया अर्थात् रोहित छन्दों की ओर नहीं जाने दिया। कनिष्ठ प्राण शुनः लाङ्गूल को आकाश तत्व मिश्रित कुछ वायु रश्मियों ने अपने साथ आबद्ध कर लिया और वह प्राण भी रोहित छन्दों के द्वारा आकर्षित नहीं किया जा सका परन्तु उपर्युक्त शुनःशेप नामक प्राण को रोहित छन्दों ने अपने साथ संयुक्त कर ही लिया और उस शुनःशेप प्राण को लेकर रोहित छन्द अरण्यस्थल अर्थात् दूरस्थ तेजस्वी वाक्तत्व समूह क्षेत्र से उस स्थान की ओर प्रवाहित हुए जहां वरुण (विद्युदग्नि) ने हरिश्चन्द्र संज्ञक तेजोमयी रश्मियों को जकड़ा हुआ था।

पाठकगण! यह हमने केवल चार नमूने आपके समक्ष प्रस्तुत किए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नमूने हमारी पूर्व लिखित पुस्तकें 'वेदार्थ समर्पणम्' एवं 'बोलो! किधर जाओगे?' में देख सकते हैं। मैंने सभी नमूने बहुत सावधानी व गोपनीयता दर्शाते हुए, ऐसे ही दिये हैं जिनमें से इस पुस्तक में दर्शाये वैज्ञानिकों से पूछे जा सकने एक सौ प्रश्नों तथा वैदिक विद्वानों को संकेत किए गये तेतालिस बिन्दुओं में से लगभग किसी एक का भी उत्तर पाठक अभी से जानने का प्रयास नहीं कर सकें। मैं मानता हूँ कि आपको मेरे व्याख्यान से सम्भवतः कुछ भी स्पष्ट नहीं हो पायेगा, परन्तु मेरे बन्धु, जरा यह तो विचारें कि आचार्य सायण जिनको समस्त पौराणिक जगत् एवं भारतीय शासन भी सर्वाधिक प्रामाणिक वेदवेत्ता मानते हैं, उनके व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद करने में डा. मालवीय जी ने अत्यन्त पुरुषार्थ किया है। इस भाष्य वा अनुवाद से हम संसार के समक्ष अपने वेदादि शास्त्रों व अपने महान् पूर्वज ऋषि–मुनियों–ब्राह्मणों का कैसा स्वरूप प्रस्तुत करना चाहते हैं? वैदिक वा भारतीय यज्ञीय संस्कृति का कैसा विकृत व बीभत्स चेहरा प्रस्तुत कर रहे हैं, फिर भी सनातनधर्मी कहला कर वेद, ऋषि, ब्राह्मण, भारतीय यज्ञीय संस्कृति के साथ–2 समस्त मानव जाति के हितैषी भगवान् दयानन्द जी सरस्वती के भक्त हम आर्यों को नास्तिक कहते हैं? क्या हो गया है, आपको? क्या मेरे व्याख्यान से आपको इतना संकेत भी नहीं मिलता कि इनमें कोई गम्भीर विज्ञान है? स्पष्ट तो मैं बाद में ही करूँगा। जो भाई विज्ञान के अध्येता हैं अथवा मेरे कार्य में अति शीघ्रता चाहते हैं, वे मेरे इन भाष्यों पर विचार करके सोचें कि मेरे पास विरासत में सायण भाष्य है। उससे मैंने अपने व्याख्यान में क्या सहायता पायी होगी? कोई वैयाकरण, निरुक्त, दर्शनाचार्य, वैदिक प्रवक्ता, इन कण्डिकाओं का अर्थ करने का प्रयास करके देखे, फिर मुझसे शीघ्रता का आग्रह करे। मान्य वैज्ञानिक महानुभावों को इन भाष्यों की तुलना करके समझ आ सकेगा कि मेरा कार्य वर्तमान विज्ञान की अपेक्षा कितना दुष्कर है? हे देवाधिदेव दयालु परमात्मन्! हम मानवों को ऐसी बुद्धि प्रदान करने की कृपा करें कि हमें वेदादि शास्त्रों का सत्यस्वरूप विदित हो सके और समस्त मानव जाति का पूर्णहित हो सके।

अन्तिम निवेदन

प्रिय पाठकगण! आशा है आपने इस पुस्तक को मनोयोग से पढ़कर तथ्यों को भली प्रकार समझने का यत्न किया होगा। मेरे अन्तिम भाष्य (व्याख्यान) से इस संसार को क्या मिल सकेगा, इसके सम्पूर्ण संकेत इस पुस्तक में उपलब्ध हैं। मेरा विश्वास है कि मेरे अन्तिम भाष्य (व्याख्यान) से महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का वह दावा अवश्य पूर्ण होगा जो उन्होंने अपने वेद भाष्य करने से पूर्व किया था जिसमें उनके वेद भाष्य से ज्ञान–विज्ञान के संसार में एक सूर्य जैसे प्रकाश की बात कही गयी थी। इसी प्रकार **मुझे आशा है इससे (अन्तिम व्याख्यान से) वर्तमान वैज्ञानिक जगत् एवं समस्त वैदिक जगत् में एक ऐसी वैज्ञानिक आर्ष प्रणाली का उदय होगा, जिससे ये दोनों ही क्षेत्र न केवल प्रभावित होंगे अपितु अपने को इस वैदिक विज्ञान की परम्परा वा शैली की ओर आकृष्ट होकर स्वयं को संशोधित व परिवर्तित करने को विवश होंगे।** किन्तु अभी तत्काल ऐसा होना सम्भव नहीं। अभी मैंने जो प्रारम्भिक रफ भाष्य जिसके चार नमूने आप इस पुस्तक में देख चुके हैं, उनकी भाषा अति क्लिष्ट व अस्पष्ट है। (हाँ, इतना अवश्य है कि मेरे भाष्य का वह भाग जो पर्याप्त स्पष्ट है तथा जिसमें वैज्ञानिकों से पूछे गये वाक्वर्णित एक सौ प्रश्नों के लगभग स्पष्ट उत्तर हैं, उन्हें प्रकाशित नहीं किया गया है, ताकि उनके उत्तर गुप्त रहें।) वर्तमान विज्ञान के अध्येता को इसमें से कुछ भी समझ में नहीं आ सकेगा। वर्तमान विज्ञान अपने विज्ञान के हर तथ्य को पूर्ण स्पष्ट परिभाषित करके प्रयोग में लाता है। तभी उसे स्वीकृत वा सिद्ध माना जाता है। जैसे इलेक्ट्रोन, तरंग, विद्युत्, क्वाण्टा, प्रोटोन आदि को ही लें तो इसके स्वरूप व गुणधर्म के विज्ञान को सामान्य विद्यार्थी भी यत्किञ्चित् जानता ही है। बड़े–2 वैज्ञानिक इसके विषय में विस्तृत ग्रन्थ लिखने में समर्थ हैं परन्तु मैं अपने इस प्रारम्भिक व्याख्यान में आये विभिन्न पदों यथा प्राण, अपान, व्यानादि, प्राथमिक प्राण, गायत्री आदि छन्द, मनः प्राण, सूत्रात्मा वायु, रुद्र, वसु आदि प्राण, ब्रह्मा, उद्गाता, अध्वर्यु आदि पदों, सत्वादि गुणों, इन्द्रियाँ, अहंकार, तन्मात्राएँ आदि पर इतना स्पष्ट अभी नहीं लिख सकता कि उसे आधार बनाकर किसी प्रयोगशाला में अनुसंधान किया जा सके, साथ ही कालान्तर में उससे किसी प्रकार की उच्चतम तकनीक का विकास हो सके। मेरे सामने अतीव समस्या यह है कि जिस प्रकार वैज्ञानिकों के सम्मुख उनके पदार्थ स्पष्ट भाषा व स्वरूप में अनेक ग्रन्थों में विद्यमान हैं, उस प्रकार मेरे पास ऐसी कोई विरासत व परम्परा नहीं है। दुर्भाग्य से हजारों वर्षों के अन्धकार में हमारा अति समृद्ध प्राचीन वैदिक वैज्ञानिक भारतीय साहित्य अज्ञानी विधर्मियों के द्वारा अग्नि की भेंट चढ़ा दिया गया, तब उस वैज्ञानिक परम्परा को मैं कहॉ से जानूँ? इस समय प्राणादि पदों का स्पष्ट अर्थ नहीं है, जो आचार्य सायण और डा. मालवीय आदि महानुभावों ने किया है। आर्य समाज के पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, आचार्य वीरेन्द्रमुनि जी आदि ने भी आचार्य सायण को ही आधार बनाकर अपनी तुक्केबाजी से कुछ परिवर्तन कर दिया है। यद्यपि पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का भाष्य मैंने देखा नहीं है परन्तु आचार्य वीरेन्द्रमुनि जी का भाष्य उनकी प्रेरणा लेकर लिखा

गया है, ऐसा मुनि जी ने अपने भाष्य में स्वीकार किया है तथा शतपथ ब्राह्मण का श्री उपाध्याय जी का भाष्य मेरे पास है, उसी से उनकी शैली मैं समझता हूँ।

पाठकगण! मुझे अब तक तो महर्षि दयानन्द जी आदि के विभिन्न अर्थ, निरुक्त, व्याकरण, अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्वचन तो भी संकेत देते थे परन्तु अब प्राणादि पदार्थों का वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में स्पष्ट स्वरूप लिखना मेरे लिए अत्यन्त कठिन चुनौती है। इसमें मेरा परमपिता परमात्मा के अतिरिक्त कोई सहायक नहीं है। मैं उन दुरूह पदों जिनका अर्थ किसी ग्रन्थ अथवा कोश से स्पष्ट नहीं हुआ और परमात्मा की कृपा से ध्यानादि प्रक्रिया से ही हुआ। मुझे प्रतीत होता है कि अब केवल यही प्रक्रिया ही सहायक होगी। **यह मेरी अग्नि परीक्षा होगी कि मैं कैसे प्राणादि पदार्थों को स्पष्ट परिभाषित व निरूपित वह भी आधुनिक प्रबुद्ध जनों की भाषा में होवे, करता हूँ जिस दिन सभी पदों को मैं स्पष्ट परिभाषा–स्वरूप प्रदान कर दूँगा, उस दिन से भूमिका लिखना प्रारम्भ कर दूँगा।** तदुपरान्त ग्रन्थ का अन्तिम भाष्य लिखना प्रारम्भ कर सकूँगा। इस प्रकार अन्तिम भाष्य ही सबकी समझ में आ सकेगा। **वह अन्तिम भाष्य इस प्रकार लिखना होगा कि आधुनिक विशुद्ध वैज्ञानिक के लिए भी सुबोध होवे, साथ ही वेद अनुसंधानकर्ता विद्वान् जो आज वेद विज्ञान के रहस्यों से नितान्त अनभिज्ञ हैं परन्तु व्याकरण, निरुक्त आदि पर अच्छा अधिकार रखते हैं। (निरुक्त के केवल स्थूल स्वरूप पर ही क्योंकि निरुक्त का वास्तविक वैज्ञानिक रहस्य वर्तमान में अज्ञात ही है, ऐसा मेरा तथा आर्य जगत् के शीर्ष विद्वान् पूज्यपाद आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र आदि विद्वानों का यही मत है।) वे भी जान सकें कि मैंने यह व्याख्यान कैसे किया है? उसकी प्रामाणिकता क्या है? यह आर्ष परम्परा का अनुसरण कैसे करता है? आदि........। तब तक कोई विद्वान् वा वैज्ञानिक अभी से मुझसे इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न न करें। धैर्य रखें। अभी मैं रफ व्याख्यान को भी पूर्ण गोपनीय ही रखूँगा।** क्षमा करें। मेरा विश्वास है कि मेरे अन्तिम भाष्य व्याख्यान को देश, भाषा, सम्प्रदाय, वर्ग, लिंग, तथाकथित जाति आदि की दीवारों को तोड़कर मानव मात्र इसे उसी प्रकार स्वीकार करेगा जिस प्रकार वर्तमान विज्ञान आदि विषयों को स्वीकार कर चुका है वा कर रहा है। उसके पश्चात् आध्यात्म के नाम पर संसार भर में प्रचलित मिथ्या मत मतान्तरों को भी यह बोध होने लगेगा कि सच्चा अध्यात्म मानव मात्र के लिए एक ही है और वह केवल वेदों वा ऋषियों के ग्रन्थों में ही विद्यमान है। इससे सभी सम्प्रदायों का एक सत्य में विलय होकर वैदिक सत्य सनातन धर्म की सार्वभौमिकता व शाश्वतता का सबको अनुभव हो सकेगा। मेरे अन्तिम भाष्य से न केवल विश्व के सभी सम्प्रदायों को महर्षि दयानन्द जी महाराज की अद्वितीय प्रतिभा, वेदज्ञता, मानवमात्र के प्रति हितकारिता का बोध हो सकेगा अपितु उनके स्वयं के भक्त आर्य विद्वानों को उनकी प्रामाणिकता, वैज्ञानिकता व प्रतिभा का बोध हो सकेगा, जिससे वे महर्षि दयानन्द जी, महर्षि ब्रह्मा जी महाराज से प्रारम्भ हुयी उज्ज्वल आर्ष परम्परा के ही अन्तिम तेजस्वी नक्षत्र के समान प्रतीत होंगे। तदुपरान्त मानव मात्र के बीच वर्तमान वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, अलगाववाद आदि मिटकर भ्रातृत्व, प्रेम, अहिंसा, समता, सत्य, न्याय का संचार होकर सभी सुखी रहने में दूसरे के सहायक बनने की ओर अग्रसर हो सकेंगे। सम्पूर्ण विश्व एक ही परमपिता परमात्मा के परिवार की भांति बन सकेगा। अन्त में मेरी यही आन्तरिक अभिलाषा है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

अर्थात् मानव मात्र सुखी, सद्गुणी वा उत्तम स्वभाव वाला होवे। सभी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रोगों से पूर्णतः मुक्त होवें। सभी उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थों को प्राप्त करने वाले होवें। कोई भी किसी प्रकार के दुःख, दुर्गुण व दुर्व्यसनों से ग्रस्त नहीं होवे। सर्वत्र–सर्वदा–सर्वथा शान्ति व आनन्द का पावन साम्राज्य होवे।

विनम्र निवेदन

मान्यवर! आशा है कि आपने इस पुस्तिका को ध्यान से पढ़कर आचार्य जी के कार्य और महत्ता को भली प्रकार समझ लिया होगा, ऐसी आशा करते हैं। यदि आपके हृदय और मस्तिष्क वेद के इस अपूर्व कार्य के लिए उत्सुक हुए हों और हमें अपना सहयोग करना चाहें तो आप हमारे यज्ञ में निम्न प्रकार से सहयोगी बन सकते हैं–

1. प्रतिवर्ष न्यूनतम 12,000/– रूपये अथवा एक बार न्यूनतम एक लाख रूपये का दान करके सहयोगी संरक्षक बन सकते हैं। आपको न्यास की वार्षिक बैठक में जो प्रायः वार्षिकोत्सव के अवसर पर हुआ करेगी, में विशेष अतिथि रूपेण आमन्त्रित किया जाता रहेगा।
2. प्रतिवर्ष न्यूनतम 6,000/– रूपये अथवा एक साथ न्यूनतम 50,000/– रूपये देकर विशेष आमन्त्रित सदस्य बन सकते हैं। आपको भी वार्षिक बैठक के अवसर पर अतिथि रूपेण आमन्त्रित किया जाता रहेगा।
3. वार्षिक न्यूनतम 1,000/– रूपये अथवा एक सौ मासिक देते रहकर सहयोगी सदस्य बन सकते हैं।
4. अपने नाम से कमरा आदि बनवा सकते हैं।
5. अपने किसी परिजन की स्मृति में अथवा यों ही स्थिर निधि में धन जमा करा सकते हैं, जिसके ब्याज का उपयोग न्यास करता रहे। जब तक न्यास ब्याज का उपयोग करेगा तब तक यदि स्थिर निधि सहयोगी संरक्षक वा विशेष आमंत्रित के बराबर है, तो आपको भी उसी श्रेणी का सदस्य माना जायेगा।
   नोट– उपर्युक्त सभी सहयोगी महानुभावों को न्यास की C.A. द्वारा की हुई वार्षिक ऑडिट रिपोर्ट भेजी जाया करेगी। जो महानुभाव स्वयं दान नहीं कर सकें वे दूसरों को प्रेरित करके कम से कम 8 सदस्य आदि बनाकर स्वयं निःशुल्क उसी श्रेणी के सदस्य वा सहयोगी संरक्षक आदि बन सकते हैं।
6. वयोवृद्ध विद्वान्, संन्यासी, साधु, महान् वैज्ञानिक महानुभाव अपना आर्शीवाद तथा बौद्धिक सहयोग दे सकते हैं।
7. विद्यार्थी, किसान, श्रमिक, व्यापारी आदि अपनी पवित्र आहुति श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार सहयोग कर सकते हैं। आई. आई. टी., इंजीनियरिंग व विज्ञान के उच्च शिक्षा वा शोध स्तर के छात्र अपना बौद्धिक सहयोग भी दे सकते हैं।

इस समय संस्थान में न्यूनतम आवश्यक निर्माण की निम्नानुसार आवश्यकता है–

1. चारदीवारी	15 लाख रुपये	अनुमानित लागत
2. कर्मचारी आवास	20 लाख रुपये	अनुमानित लागत
3. 2 वर्षा जल संग्रह टैंक	5 लाख रुपये	अनुमानित लागत
4. सौर ऊर्जा प्लांट, सड़कादि निर्माण	5 लाख रुपये	अनुमानित लागत

इस समय संस्था में 3 शोध सहायक, 1 कार्यालय प्रमुख, 1 व्यवस्थापक एवं एक सेवक वैतनिक रूप से कार्यरत हैं। संस्था का वार्षिक व्यय लगभग 13 लाख रुपये आता है। जिसमें कुल मिलाकर लगभग 8 लाख वार्षिक का सहयोग वर्तमान में प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार 5 लाख रुपये वार्षिक की अतिरिक्त आवश्यकता है।

विशेष निवेदन

यह कार्य अत्यन्त पवित्र है, इस कारण आचार्य श्री की भावनानुसार विनम्र निवेदन है कि **जिनकी आजीविका किसी भी प्रकार की हिंसा, चोरी, तस्करी, अश्लीलतावर्धक साधनों, नशीली वस्तुओं की विक्री, धोखाधड़ी, शोषण आदि पर निर्भर हो तथा जो निर्धन भाई अपनी सामर्थ्य से अधिक (अथवा अपने परिवार में क्लेश करके) दान देना चाहते हों, ऐसे महानुभावों की सद्भावना का धन्यवाद करते हुए भी हम उनका दान लेने में असमर्थ हैं। कृपया ऐसा करने का प्रस्ताव करके हमें लज्जित न करें। हाँ, जो बन्धु ऐसे कर्मों को त्यागकर हमसे जुड़ना चाहें, तो उनका हार्दिक स्वागत है।**

कृपया आप अपना चैक/ड्राफ्ट/धनादेश, **''प्रमुख, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास'' PAN No. AAATV7229A** के नाम (केवल खाते में देय) भेजने का कष्ट करें, साथ ही अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखकर अवश्य भेजने की कृपा करें। **पंजाब नैशनल बैंक, शाखा– भीनमाल, IFS Code : PUNB0447400, खाता सं. – 4474000100005849 अथवा स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, शाखा– भीनमाल, खाता सं– 61001839825** में ऑन लाइन भी आप धन जमा करवा सकते हैं परन्तु ऐसा करने वाले **महानुभाव अपना नाम व पता दूरभाष द्वारा तत्काल सूचित करने का कष्ट करें,** जिससे समय पर रसीद भेजी जा सके, अन्यथा हमें बहुत कठिनाई होती है।

नोट– न्यास को दिया हुआ दान आयकर अधिनियम की धारा 80–जी के अन्तर्गत कर मुक्त है।

–: प्रकाशक :–

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास
(वैदिक एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान शोध संस्थान)
वेद विज्ञान मन्दिर, भागलभीम
भीनमाल, जिला–जालोर
(राजस्थान) पिन– 343029
दूरभाष– ०२९६९ २९२१०३, ०९८२९१४८४००, ०७७४२४१९९५६
Website : www.vaidicscience.com
E-mail : swamiagnivrat@gmail.com